http://www.jainkosh.org

सहजानंद शास्त्रमाला

परीक्षामुखसूत्र प्रवचन

भाग 3

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

[सहज]ानन्द शास्त्रमाला सर्वाधिकार सुरक्षित

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[१, २, ३, ४ भाग]

प्रवक्ता :
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' महाराज

सम्पादक :
पं० देवचन्द जैन शास्त्री, सहारनपुर

प्रबन्ध-सम्पादक :
बैजनाथ जैन, सदस्य स० शा०
यादगार बड़तला, सहारनपुर

प्रकाशक :
मंत्री, सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

मुद्रक :
साहित्य प्रिंटिंग प्रेस, बाजार दीनानाथ, सहारनपुर

१९६८] [न्योछावर ४ रु०

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[तृतीय भाग]

●

प्रमाणप्रकरण—प्रमाण क्या चीज है ? इसका वर्णन चल रहा है। प्रमाण बताया है—जो स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय कराने वाला ज्ञान हो वह प्रमाण होता है। तो यहाँ विचार चल रहा है व्यवसायात्मक ज्ञान प्रमाण होता है इस बातपर। जो ज्ञान पदार्थका निर्णय कर रहा है कि पदार्थ ऐसा है और इसी निर्णयमें यह भी बात पड़ी हुई है कि इसमें हमारा हित है और इसमें हमारा अहित है। तो जो हित की प्राप्ति कराये अहितका परिहार कराये वह ज्ञान प्रमाण होता है।

व्यवसायात्मक ज्ञानको प्रमाण माननेमें शङ्काकारकी आपत्ति—व्यवसायात्मक ज्ञानकी प्रमाणतापर एक दार्शनिक यह आपत्ति कर रहा है कि व्यवसायात्मक ज्ञानको प्रमाण माननेपर तो सारे ज्ञान प्रमाण हो जायेंगे क्योंकि जो भी ज्ञान होता है वह कुछ न कुछ तो निश्चय रखता ही है। पदार्थ है कुछ और जान लिया जाय कुछ तो भले ही और कुछ जान लिया हो, किन्तु वहाँ भी निश्चय तो है। जैसे पड़ी तो सीप है और हम जानते हैं कि यह चाँदी है तो कुछ निर्णय तो है ही। यदि व्यवसाय (निश्चय) करने वालेको प्रमाण माना जाय तो सारे ज्ञान निश्चयभूत होते हैं, सभी प्रमाण बन बैठेंगे तो विपर्यय ज्ञान फिर कुछ नहीं रहा। क्योंकि उल्टा ज्ञान भी कुछ न कुछ निर्णय तो बनाये हुए है, अथवा जिस किसी पदार्थको हमने जान लिया उस ही पदार्थको हम बार बार जाना करें—चौकी है, चौकी है, चौकी है, लगातार जाना करे तो ऐसा धारावाही ज्ञान भी प्रमाण बन बैठेगा, किन्तु तुम्हारे स्याद्वाद सिद्धान्तसे तो प्रमाण होगा अपूर्व अर्थ। नई बात जानें तो प्रमाण है। एक बार जाना चौकी, पर उसको बार बार जाननेकी रट लगायें तो अनेक बारका जानना इसमें प्रमाणपना नहीं रहा कहा, लेकिन निर्णय तो सभी ज्ञानोंमें बसा है। बार बार जान रहे हैं उनमें भी निर्णय पड़ा हुआ है। तो धारावाही ज्ञान भी और विपरीत ज्ञान भी प्रमाण बन बैठेगा। और, जब उल्टा ज्ञान और धारावाही ज्ञान प्रमाण बन गये तो फिर व्यवहार न चल सकेगा। फिर हम व्यवहारमें किसे प्रमाण कहें और किसे अप्रमाण कहें ? सारे प्रमाण बन गए, अप्रमाण कुछ रहा ही नहीं तो व्यवहार कैसे चलेगा, इस कारणसे व्यवसायात्मक ज्ञान प्रमाण होता है यह बात समझमें ठीक नहीं बैठती कुछ और सोचना चाहिए।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपूर्व विशेषणसे धारावाही ज्ञानके प्रमाणत्वका निरास—व्यवसायात्मकताकी शङ्कापर आचार्य उत्तर देते हैं कि जो कुछ और सोचना चाहिए वह सोच कर ही तो कहा गया है। अपूर्व अर्थका जो निश्चय कराये उस ज्ञानको प्रमाण कहते हैं। केवल निश्चय करने वाले ज्ञानका नाम प्रमाण हमने नहीं कहा किन्तु नये सही पदार्थका ज्ञान कराने वालेको हम प्रमाण कहते हैं। यदि इतना ही कहें कि निश्चय करने वाले ज्ञानको प्रमाण कहते हैं तो सारे ज्ञान प्रमाण बन बैठेंगे क्योंकि निश्चय सारे ज्ञान रखते हैं, पर इसमें अपूर्व अर्थका विशेषण भी दिया है कि नये अर्थका निश्चय कराये वहस्ज्ञान प्रमाण है। तो नवीन अर्थका निश्चय कराये यह कहकर तो धारावाही ज्ञानसे अलग किया है। धारावाही ज्ञान उसे कहते हैं कि एक बार जानने पर उस ही रूपमें बराबर जानते ही रहना इसका नाम है धारावाही ज्ञान। जैसे धाराका प्रवाह है तो वही है इसी तरह एक बार जान लिया अब उसको उस ही रूपमें उतने ढंगसे बराबर जानना सो धारावाही है। यदि कुछ और विशेष जानकारी रखी जाय तो धारावाही नहीं। जैसे कमण्डलको जान लिया कि यह कमण्डल है अब इस ही बारेमें और और विशेष जानें यह लकड़ीका है। यह नारियलका है, यह समुद्रके किनारे पाया जाता है, यों जानकारियां करें तो धारावाही नहीं रहा। धारावाही तो तब था जब जितना जानें उतना ही बराबर जानते रहें पर विशेष-विशेष जाना तो धारावाही नहीं है। तो इस धारावाही ज्ञानको प्रमाण न माननेके लिये सूत्रमें अपूर्व शब्द दिया है।

अर्थ विशेषणसे विपर्यय ज्ञानका निरास—उल्टा ज्ञान प्रमाण न हो जाय इसकी रक्षाके लिये अर्थ विशेषण दिया है। जैसा पदार्थ है वैसा ही निश्चय करें तब ज्ञान प्रमाण है। पदार्थ तो है और कुछ और निश्चय कर रहे हैं और कुछ तो यद्यपि उसमें भी निश्चय पड़ा है लेकिन वह निश्चय पदार्थके अनुरूप नहीं है। पदार्थ है कुछ और निश्चय किया जा रहा है अन्य कुछ अतएव अप्रमाण है। विपर्यय ज्ञान तो पदार्थको विषय नहीं करता। पड़ी तो है रस्सी और जान लिया सांप तो यथार्थ पदार्थ तो जाननेमें नहीं आया। तुम्हारी कल्पना बन गई अलगसे। तो पदार्थका ज्ञान होना सो प्रमाण है। पर पदार्थ तो है और कुछ जानते हैं और कुछ तो यों विपरीत ज्ञान प्रमाण नहीं है। जो जान लिया उससे कुछ विशेष नहीं जाना और वही वही जानते रहें याने धारावाही ज्ञान वह अविशेषग्राही है अर्थात् जो समझा था उससे और कुछ अधिक न समझकर उसी उसीको रटते हैं वह अपूर्व शब्दके देनेसे अलग हो जाता है तथा अर्थ विशेषणसे विपर्यय ज्ञानकी प्रमाणताका निराकरण हो जाता है।

अपूर्वार्थ विशेषणसे धारावाही ज्ञानके प्रमाणत्वका निराकरण व व्यवसायात्मक विशेषणसे संशय विपर्यय अनध्यवसाय ज्ञानका निराकरण—अथवा अपूर्व अर्थका विशेषणने तो धारावाही ज्ञानका निषेध किया और व्यवसायात्मक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञान प्रमाण है इस मुख्य प्रतिपादनने संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय इन तीनों समारोंपोंका परिहार किया। संशय ज्ञान कहते हैं किसी पदार्थके सम्बन्धमें अनेक कोटिका ज्ञान बनाना कि यह पदार्थ ऐसा है या ऐसा। जैसे रस्सी पड़ी है और वहाँ दो कोटि का ज्ञान बने कि यह रस्सी है या सांप है तो उसका नाम संशयज्ञान है। संशयज्ञान झूठा ज्ञान है। इसी प्रकार है तो रस्सीपर जान रहे हैं कि यह सांप ही है तो यह ज्ञान भी सही है क्या? यह भी मिथ्या है, क्योंकि पदार्थ है और कुछ, जान लिया और कुछ, यह हो गया विपर्यज्ञान। इसी तरह किसी पदार्थके सम्बन्धमें कुछ तो प्रतिभास हो गया लेकिन उसका निर्णय कुछ नहीं हो पा रहा, जैसे रास्ता चलते हुयेमें कितने ही शब्द सुनाई देते हैं पर उन सबके बारेमें यह निर्णय नहीं बन सकता कि ये शब्द क्या है, किसका है, ऐसा अनध्यवसित ज्ञान अनध्यवसायसे ज्ञान होनेसे कहलाता है। यह अनध्यवसाय भी प्रमाण नहीं होता, किन्तु जिस ज्ञानमें संशय न हो, विपर्यय न हो, अनध्यवसाय न हो और सही अर्थका पूर्ण निश्चय कराने वाला हो वह ज्ञान प्रमाण होता हैं।

प्रमाण स्वरूपका संस्मरण—हम आप सब ज्ञान स्वरूप पदार्थ हैं। हम अपने ज्ञानकी ही बात न जान पायें तो हमने अपने लिये क्या किया? दूसरे वस्तुके स्वरूपका निर्णय प्रमाणसे होता है। तो प्रमाणको समझना तो चाहिए कि प्रमाण का तत्त्व क्या है? प्रमाणका स्वरूप समझ लेंगे तब ही हम वस्तुका ठीक-ठीक विचार कर सकेंगे। तो इस तरह यहाँ तक यह बात सिद्ध की है कि जो ज्ञान स्व अपूर्व अर्थका निश्चय कराये वह प्रमाण होता है। तो निश्चयात्मक ज्ञान ही प्रमाण होता है क्योंकि ऐसा ही ज्ञान संशय विपर्यय और अध्यवसायको दूर करता है।

शङ्काकारद्वारा संशयके स्वरूपकी असिद्धका प्रयास—इस प्रसङ्गमें कोई यह कहते हैं कि संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय ये ज्ञान ही सिद्ध नहीं हैं। संशयका क्या स्वरूप? स्वरूप ही नहीं बनता फिर व्यवसायात्मक शब्द देकर तुम किस ज्ञान का निराकरण करते हो? संशय कहते किसे हैं कि किसी पदार्थमें कई विकल्प उठ जाना कि यह पदार्थ यह है कि यह है, सीप है या चांदी है या काँच है? अनेक प्रकार के विकल्प उठ जाना तो संशय ज्ञान है। तो यह बतावो कि संशय ज्ञान जब हो रहा है तो उस संशय ज्ञानमें धर्मी प्रतिभासमें आ रहा है या धर्म? अर्थात् संशय ज्ञानमें वह समूचा पदार्थ आ रहा है या उस पदार्थका कोई धर्म ज्ञानमें आ रहा है? यह प्रश्न किया। यहाँ प्रतिपक्षी द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्तके खिलाफ कहा जा रहा है कि संशय कोई चीज नहीं है। संशयका स्वरूप ही सिद्ध नहीं होता। अगर संशय है तो यह बतावो कि संशय ज्ञानमें वह पदार्थ पूरा ज्ञानमें आ रहा है या उस पदार्थका कोई अंश ज्ञानमें आ रहा है।

संशयज्ञानके स्वरूपकी असिद्धिमें धर्मी, धर्म, तात्त्विक, अतात्त्विक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विषयके विकल्प—संशय ज्ञानके विकल्पों द्वारा पूछनेका मतलब यहाँ यह है कि संशय नामकी कोई चीज ही नहीं है। वह व्यवसायात्मक विशेषणको व्यर्थ करनेके लिये संशय ज्ञानको उड़ाना चाहता है, पर संशय ज्ञान होता है। भले ही वह यथार्थ ज्ञान न हो, पर संशय नामका ज्ञान होता है दुनियामें। सब लोगोंको अपनी प्रतीतिमें आ रहा है कि संशयात्मक भी ज्ञान हुआ करता है। संशय ज्ञानमें धर्मी प्रतिभास होता है या धर्म, अर्थात् पूरा पदार्थ। अगर पदार्थ प्रतिभासमें आ रहा है तो वह सही आ रहा है या झूठ ? यदि सही आ रहा है तो फिर संशय क्या रहा है ? जब तात्त्विक अर्थका ग्रहण कर लिया तो तात्त्विक अर्थका ग्रहण करने वाला ज्ञान तो प्रमाण है। जैसे हाथका तला हम जान रहे हैं तो यह तो सही है, प्रमाण है, झूठ क्या हो सकता है। यदि संशय ज्ञानमें तात्त्विक पदार्थ जाननेमें आ रहा है तो जानकारीमें तो वह ठीक ही हो गया। अगर अतात्त्विक ज्ञान समझमें आ रहा है तो वह अतात्त्विक अर्थ को विषय बनानेसे संशय भी भ्रान्त रहा, संशय स्वयं कुछ चीज नहीं रहा। जैसे जिस का कुछ बिगाड़ करना हो तो किसी भी प्रकार हो, कुछ न कुछ बिगाड़ कर दे चाहे काम बिल्कुल उल्टा हो जाय। उसे तो बिगाड़से मतलब है।

संशय ज्ञानके स्वरूपमें शङ्काका विवरण—यहां संशय ज्ञानके स्वरूपका बिगाड़ करनेकी दृष्टिसे एक दार्शनिक यह कह रहा है कि संशय ज्ञान कोई वस्तु ही नहीं है, फिर अप्रममाणकी बात क्या रही ? और वह इस शब्दसे सिद्ध कर रहा है कि संशय ज्ञानमें पदार्थ तो आया नहीं। यदि पदार्थका धर्म आये जैसे कि सुबह ५ बजे कोई घूमने जा रहा है, कुछ अंधेरा उजेला है, रास्तेमें किसी खड़े हुए ठूठमें यह भ्रम हो जाय कि यह आदमी है या ठूठ है, तो यहाँ पुरुष व ठूठका जो साधारण रूप से संभवित आकार ज्ञानमें आया है वह तो हुआ धर्म और जो भी वह चीज है वह है धर्मी। साधारण आकार प्रकार जाननेमें आया तो वह धर्म कहलाया। तो यह बतलाओ कि संशय ज्ञानमें ठूठपना जाननेमें आ रहा या पुरुषपना जाननेमें आ रहा या दोनों बातें जाननेमें आ रही। यदि रास्तेमें ठूठपना जाननेमें आ रहा तो वह भी सही है या झूठ ? सही कहोगे तो संशय क्या, अतात्त्विक कहोगे तो भी संशय क्या ? ऐसी ही धर्मकी बात भी तात्त्विक व अतात्त्विकके विकल्पसे खण्डित हो जायेंगे यदि कहो कि दोनों ही ज्ञानमें आ रहे संशय ज्ञान करने वाले पुरुषके ज्ञानमें ठूठपना और पुरुष पना दोनों रहे तो दोनों सही हैं या झूठ ? उसमें भी वही दोष है। यदि कहो कि उनमें एक धर्म तो तात्त्विक है और एक अतात्त्विक संशय ज्ञानमें वे दोनों बातें तराजू के बराबर तौल माफिक समान रूपसे आ रही है, जैसे कि पड़ी है सीप और जान रहे हैं कि सीप है या चाँदी तो ये दोनों तरहके ज्ञान एक तौल आ रहे हैं संशयज्ञान में तो जितने ज्ञान किए जाते हैं वे सब एक समान दृढ़ताको लिए हुए है या अदृढ़ता को तो सब एक बराबर हैं। इसपर वे समाधान देते हैं कि संशयमें एक तो तात्त्विक ज्ञान आ रहा हो और एक अतात्त्विक हो यह बात नहीं बन सकती एक ज्ञानमें एक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

धर्म तात्त्विक और एक अतात्त्विक धर्म ये विरुद्ध बातें नहीं हो सकती। फिर भी उस का विषय कहेंगे तो जो सही जाना वह सही हो गया, जो अतात्त्विक जाना वह संशय ज्ञ न भ्रान्त हो गया। संशय खुद भ्रान्त हो गया तो संशय ज्ञानकी सिद्धि नहीं हुई।

मीमांसामें ज्ञानविकल्पोंका ही खण्डन-मण्डन—यह एक ज्ञानकी मीमांसा चल रही है कि सही ज्ञान किसे कहते हैं और झूठ ज्ञान किसे कहते हैं ? जब वस्तु-स्वरूपका विचार चलेगा, वादी और प्रतिवादी दोनों खड़े होकर अपनी–अपनी बात रखेंगे तो खण्डन–मण्डन कैसे बनेगा ? यों ही बनेना कि दूसरेके ज्ञानमें दोष लगे कि तुम्हारा ज्ञान झूठा है और अपने ज्ञानमें दोष न लग सके। जब तक ज्ञानके बारेमें सच्चा ज्ञान क्या होता है ? और झूठा ज्ञान क्या होता है ? इनका स्वरूप न जान ले तब तक वाद–विवाद क्या हो सकेंगे ? यहाँ एक बात और समझिये ! कोई भी मनुष्य यदि किसी दूसरेकी बातका खण्डन करता है तो पदार्थका खण्डन नहीं करता किन्तु दूसरेकी कल्पनाओंका खण्डन करता है कि आपमें जो ये कल्पनायें उठी हैं वे सही नहीं हैं। जैसे पड़ी तो है सीप और आप जान रहे हैं कि यह चाँदी है और हम आपको समझा रहे हैं कि यह चाँदी नहीं है यह सीप है और आप उसे चाँदी ही समझ रहे हैं तो आप यह बतावो कि हम खण्डन किसका कर रहे हैं ? हम किसी पदार्थका तो खण्डन कर नहीं रहे हम तो आपके अन्दर जो मिथ्या कल्पना उठी उसीका खण्डन कर रहे हैं। पदार्थका खण्डन कोई नहीं करता। पदार्थ यदि है तो उसका खण्डन क्या किया जाय ? वह तो है ही। और, पदार्थ यदि नहीं है तो उसका खण्डन क्या हो ? तो खण्डन जितने चलते हैं वे दूसरेके ज्ञानविकल्पोंके खण्डन चला करते हैं, सच और झूठ पदार्थ नहीं हुआ करते, पदार्थ तो जो है सो है। है तो है और नहीं है तो नहीं है सच और झूठकी बात तो कल्पनामें लायी जाती हैं। पदार्थ जैसा है वैसी यदि आपकी कल्पना बनी तो कहेंगे कि भाई आपका ज्ञान सच्चा है। और, पदार्थ है और भांति, कल्पना बने और भाँति तो कहा जायेगा कि आपका ज्ञान झूटा है। तो ज्ञानमें ही तो सत्य और झूठकी बात आती है, पदार्थमें नहीं आती। तो उस ही ज्ञानकी मीमांसा की जा रही है।

संशयस्वरूपकी असिद्धिके निरूपणसे प्रमाणकी निश्चयात्मकताके निरसनका प्रयास – ज्ञान सत्य कौन हुआ करता है ? तो प्रस्ताव यह रखा गया है कि जो ज्ञान संशय विपर्यय और अनध्यवसायको दूर कर दे और पदार्थका निश्चय कराये वह ज्ञान प्रमाण होता है वही शुद्ध ज्ञान कहलाता है। तो इसपर संशयके स्व-रूपकी सिद्धिके विरोधमें एक दार्शनिक कह रहा है – बतावो, तुम्हारे संशय ज्ञानमें झलकता क्या है ? यदि कहो कि संदिग्ध अर्थ झलकता है तो वह भी वहां मौजूद है कि नहीं ? है तो संशय क्या ? इस तरहसे संशय आदिक ज्ञान कुछ भी चीज नहीं है, तब फिर निराकरण किसका हो, ऐसा एक दार्शनिक कह रहा है और संशय ज्ञानकी भाँति विपर्यय ज्ञान भी कुछ चीज नहीं है। विपरीत ज्ञान कहते हैं। उल्टे ज्ञान को

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पदार्थ है और भाँति, जान रहे हैं और भाँति। तो इसके सम्बन्धमें बहुत वर्णन आ चुका कि विपर्यय ज्ञान भी कुछ नहीं है। तब फिर तुम्हारा यह लक्षण नहीं बन सकता कि जो स्व और अपूर्व अर्थका निश्चयात्मक ज्ञान कराये सो प्रमाण है।

संशयज्ञानके स्वरूपकी प्रसिद्धि—देखिये ! विचार करनेपर संशयादिक ज्ञानोंके स्वरूपकी सिद्धि यथार्थ हो जाती है। जब संशयज्ञान होता है तब सर्वप्राणियों को अपने आप विदित होता है कि यह मेरा ज्ञान चलितप्रतिपत्तिरूप है। जिसमें अवगम चलित हो वही तो संशयज्ञान है। जिस ज्ञानमें निर्णय नहीं बसा वह ज्ञान खुद में फिट बैठता ही नहीं, खुद विश्राम ले नहीं सकता। मिथ्या ज्ञान जब तक चलता है तब तक सही बुद्धि नहीं मिल सकती। जब ज्ञान सही हो तो आत्माको विश्राम मिलेगा। जैसे मान लो रास्तेमें पड़ी तो रस्सी है और जान रहे कि रस्सी है कि साँप है ? तो ऐसा जानने वाला भी घरमें विश्रामसे नहीं रह सकता अथवा जान लिया कि यह साँप है तो विश्रामसे नहीं रह सकता। यथार्थ ज्ञान जब हो गया कि यह रस्सी ही है तब उसको शान्ति उत्पन्न होती हैं। इसी तरह संसारका यह समूह, इसके संबंध में यों जानते रहें कि यह हमारे लिए सारभूत है या नहीं है, संशय ही करते रहें तो उसमें भी आत्मध्यान नहीं जनता और इस जगतको सारभूत मान लें तो यह उल्टा ज्ञान हो गया तो यहाँ भी आत्मध्यान नहीं बनता।

अचलित प्रतिपत्तिके बिना विश्रामका अलाभ—जब यह पूर्ण निर्णय हो जाता कि मेरे आत्माके सिवाय अन्य जितने भी पदार्थ मौजूद हैं वे इस आत्माके लिये सारभूत नहीं है। वे तो विकल्पके कारण बनेंगे और हमारे क्लेशके कारण बनेंगे। मेरे आत्माको मेरे ज्ञान स्वरूप यह आत्मतत्वका दर्शन होना ही शरण है, इसके अलावा बाकी जितने भी संग प्रसंग विकल्प हैं वे सब मेरे लिये अहितकर हैं ऐसा खुदमें निर्णय बने तो विश्राम प्राप्त होता है। ऐसा विश्राम प्राप्त करनेके लिये हमें अपने ज्ञानका ज्ञान करना है हमें अपने स्वरूपका निर्णय करना है कि मैं देहसे न्यारा ज्ञान स्वरूप मात्र हूँ। जब कभी यह मनुष्य सर्व परभावसे हटकर अपने अन्तरङ्गमें ऐसे निर्विकल्प तत्त्व स्वरूपपर झुके मैं तो यह हूं, बस सब विकल्प संकल्प शान्त हो जायेंगे।

अज्ञानके प्रमाणत्वका निराकरण—यह दर्शन शास्त्रका परीक्षामुखसूत्र ग्रन्थ है। इसमें ज्ञानकी परीक्षा की गई है कि कौनसा ज्ञान प्रमाण माना जाता है और कौनसे ज्ञान अप्रमाण माने जाते हैं। इस सम्बन्धमें सर्व प्रथम यह बताया गया है कि जो स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय कराने वाला ज्ञान है वहप्रमाण है अर्थात् ऐसा ज्ञान प्रमाण है जो ज्ञान खुदको भी जाने और नवीन नवीन पदार्थोंको भी जाने। इस सम्बन्धमें सर्वप्रथम यो अनेक दार्शनिकोंने ज्ञानपर ही आपत्ति उठायी थी। उनका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहना था कि ज्ञान प्रमाण नहीं होता किन्तु जिन पदार्थके रहनेसे ज्ञान बने उन पदार्थों का इकट्ठा हो जाना प्रमाण है या इन्द्रियका पदार्थसे जुड़ जाना प्रमाण हैं या इन्द्रिय हलन चलन होनेका नाम प्रमाण है। जैसे आंखें खोली तो जानकारी हुई तो आंखों का खुलना प्रमाण है। तो किसीने कहा कि अचेतन आत्माका व्यापार प्रमाण है। यों अज्ञानको प्रमाण बनानेकी कोशिशकी गई थी उसका निराकरण किया। ज्ञान प्रमाण है यह सिद्धान्त स्थापित हुआ।

अव्यवसायात्मक ज्ञानके प्रमाणत्वका निराकरण—तब क्षणिकवादी यह कहने लगे कि ज्ञान तो प्रमाण है पर निर्णय करने वाला ज्ञान अप्रमाण है और जिस ज्ञानका निर्णय नहीं होता किन्तु एक स्व लक्षण मात्र झलक है वह प्रमाण है और इसमें भी यह युक्ति दी है कि जब पदार्थ क्षण-क्षणमें नष्ट होते हैं तो जिस क्षणमें पदार्थ है उस क्षणमें तो निर्णय हो नहीं पाता निर्णय होता है अगले समयोंमें। तो जिस समय निर्णय हो रहा है उस समय पदार्थ नहीं रहा तो निर्णयने असत्को जाना, सत तो उस क्षण था और नष्ट हो गया। जो असत्को जाने वह तो झूठा ज्ञान है। यह उनकी युक्ति थी, जिससे यह सिद्ध करना चाहा कि जो ज्ञान कुछ निश्चय करता है वह तो झूठा है और जिसमें कुछ भी निश्चय नहीं ज्ञान तो वह सच्चा है यों क्षणिक वादियोंने कहा है उसका निराकरण किया है। और इसका निराकपण निश्चयात्मक ज्ञानप्रमाण है इसकी सिद्धिमें किया। इसके बाद फिर एक शब्दाद्वैतवादी दार्शनिक कहने लगा कि निर्णय करने वाला ज्ञान तो प्रमाण है, पर निर्णयात्मक ज्ञान अलगसे कुछ नहीं है। जो भीतरमें शब्द उठते हैं बस वे शब्द ही प्रमाण हैं। यों शब्दानुबिद्ध-त्व प्रत्ययकी सिद्धिका यत्न किया उसका निराकरण किया।

संशयज्ञानके स्वरूपकी विराधनाका प्रयास- इसके बाद फिर अनेक दार्शनिकोंने एक साथ यह आपत्ति उठाई कि निर्णय करने वाला ज्ञान प्रमाण है। क्योंकि उसमें संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय नहीं रहते, ऐसा जो जैनोंने कहा है तो यह तो तब बने जब संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय भी कोई ज्ञान होता हो। उसका स्वरूप ही सिद्ध नहीं। ये दार्शनिक यह कह रहे हैं कि संशयज्ञान कुछ भी चीज नहीं होती। यह चर्चा अपने आपकी है और सभी ज्ञानरूप है, सभी जानकारी किया करते हैं। जानकारियोंमें क्या क्या ढङ्ग रहा करते हैं उनका इसमें विवेचन है। चर्चा अधिक कठिन नहीं है लेकिन किसी कठिनाईसे भी समझे जाने वाले तत्त्वकी उपेक्षा ही करते जायें कि हमें तो सरल सरल सुनना है। तो सरल सरल सुनते रहनेमें तो सरलके कारण वह ठहर नहीं पाता, जो अत्यन्त सरल है वह भी बात हृदयमें जमती नहीं है और जो कठिन है उससे करे उपेक्षा कि यह तो बड़ी कठिन चर्चा है, यह चर्चा हमसे सुनी नहीं जाती, तो उसके निकट जिन्दगीमें कभी पहुंच ही न सकेंगे। ध्यानपूर्वक सुननेसे सभी विषय सुगम हो जाते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

संशयज्ञानके स्वरूपके विरोधमें कुयुक्तियोंका उगाल—यहाँ कुछ दार्शनिकोंने यह बात रखी है कि संशयज्ञान कुछ चीज नहीं है। संशय ज्ञानका अर्थ है संदेह करने वाला ज्ञान। जैसे पड़ी तो सीप हो और जानकारी रख रहे हों यों कि यह सीप है या चाँदी है तो इसका नाम है संशयज्ञान। विरुद्ध दार्शनिकोंने यह बात रखी कि संशयज्ञान कुछ चीज नहीं क्योंकि यह बतावो कि संशय ज्ञानमें पदार्थ आया है ज्ञानमें या धर्म आया है ज्ञानमें। पदार्थ तो आप जानते ही हैं और धर्म मायने सफेदी, लम्बा–चौड़ा आकार आदि ये सब धर्म कहलाते हैं। तो चाहे पदार्थ ज्ञानमें आ रहा हो चाहे धर्म ज्ञानमें आ रहा हो वह तात्त्विक याने सही ज्ञानमें आ रहा है ? या अतात्त्विक ज्ञानमें आ रहा है ? यदि तात्त्विक ज्ञानमें आ रहा तो फिर संशय कहाँ रहा ? सही रहा ! यदि अतात्त्विक विषय है ? तो भ्रान्तका ज्ञान करने वाला भ्रान्त हो गया तो स्वरूप ही उसका भ्रान्त हुआ। संशय ज्ञान कुछ नहीं है, ऐसी–ऐसी अनेक युक्तियाँ दीं।'

प्रतीतिसिद्ध संशयज्ञानके स्वरूपके अपन्हवकी अशक्यता—उसपर आचार्य समाधान दे रहे हैं कि यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि बड़े गजबकी बात है कि जो संशय ज्ञान सभी मनुष्योंको बिल्कुल सही मालूम होता है कि जिसमें प्रतिपत्ति चलित हो गयी हो, जिसमें एक किसीकी ओर झुकाव न हो, यह है या यह नहीं है, ऐसी चलित प्रतिपत्ति हों, सभी मनुष्योंको उस संशयज्ञानका पता है। जिसका भली भांति पता है उसमें कुछ विकल्प उठाकर उसे खण्डित करना यह तो एक दोंदा-पट्टीकी बात है। इन विकल्पोंसे संशयज्ञानका स्वरूप खण्डित नहीं हो सकता। जो बात एकदम स्पष्ट ज्ञात है उसमें भी कुछ विकल्प उठाकर उसका खण्डन करें तो फिर सुख दुःख आदिक कुछ भी चीजें सिद्ध नहीं कर सकते। अनेक विकल्प उठाने लगो जो सुख तुम भोग रहे हो सो यह बतावो कि वह सुख पदार्थ है या कोई धर्म है ? यदि पदार्थ है तो पदार्थ रहा, तुमने भोगा क्या ? यदि धर्म है तो बतावो कि किसका धर्म है ? विषयका धर्म है कि जीवका धर्म है। विषयका धर्म है तो विषय सुखी रहे, तुम्हारा धर्म है तो वह सुख धर्म तुमसे भिन्न है या अभिन्न है ! सुख भिन्न है तो तुमने भोगा क्या, सुख अभिन्न है तो तुमने भोगा क्या ? तुम और सुख एक चीज रहे। जिस चाहेका विकल्प करके जिस चाहेको खण्डित बना दो।

प्रत्यक्ष सिद्धके विरोधमें कुयुक्तियोंसे विडम्बना—भैया ! एकान्तवाद व मिथ्यावाद तर्कपर संगत नहीं होते। भिन्न और अभिन्नके विकल्प उठाकर जिस चाहे का मुंह तुरन्त बन्द कर दो। एक स्याद्वादका मुंह बन्द नहीं हो सकता। जैसे पूछा जाय कि बतावो यह जो तुम्हारे पास घड़ी है वह तुमसे भिन्न है कि अभिन्न है ? अगर घड़ी तुमसे भिन्न है तो वह तुम्हारी कहाँ रही और अगर अभिन्न है तो तुम और घड़ी दोनों एक हो गए। फिर ये अलग अलग चीजें नहीं रहीं। फिर उसमें किसका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कौन स्वामी बताया जाय ? तो स्याद्वादके सहारे बिना तो किसी तत्त्वका स्वरूप ही नहीं कह सकते और फिर जो प्रत्यक्ष सिद्ध बात है उसकी युक्तियोंका निर्माण करके अगर खण्डन करने लगे तो फिर दुनियामें कोई बात न रहेगी। अच्छा बतावो अग्नि गर्म है या ठंडी है ? अग्नि ठंडी है। क्योंकि पदार्थ होनेसे। अग्नि पदार्थ है कि नहीं ? और जो जो पदार्थ होते हैं वे ठंडे होते हैं जैसे पानी, ओला, बर्फ ये पदार्थ हैं। किसी भी बातमें धोधापट्टी करते रहें तो कोई प्रत्यक्ष सिद्ध बात भी खंडित हो सकती है। लेकिन जो बात प्रत्यक्ष सिद्ध है उसका खंडन किसी भी प्रकार नहीं किया जा सकता। तो संशय ज्ञान सबको भली भांति परिचयमें आ रहा है कि संशय ज्ञान भी कुछ हुआ करता है, फिर उसमें विकल्प उठाना बेकार है।

समारोपोंका रूपक—हे संशय स्वरूपके विरोधको ! अच्छा तुम यह बतावो जो तुम पूछते हो कि संशय धर्मीको विषय करता या धर्मको विषय करता ? तो इस प्रश्नको उठाकर तुम्हें भी कुछ सन्देह है क्या ? अगर है तो संशयज्ञानकी सिद्धि हो गई तुम्हारा ही ज्ञान संशयज्ञान हो गया। तो संशयज्ञान भी होता है विपर्यय व अनध्यवसाय भी होता है। उसके निराकरणके लिए यह बताया है कि जो संशय विपर्यय अनध्यवसाय इन दोनों अज्ञानोंका निराकरण करे वह ज्ञान प्रमाण होता है। जैसे आत्माके स्वरूपके सम्बन्धमें कोई यों सन्देह करे कि आत्मा सचमुच है कि शरीरका ही नाम आत्मा है ? तो इस चलित प्रतिपत्तिरूप ज्ञानका नाम हो गया संशयज्ञान। इसमें निर्णय तो नहीं बसा है, सो यह ज्ञान अप्रमाण रहा। कोई ऐसा ज्ञान करे कि यह आत्मा तो यही शरीर है तो यह हो गया विपर्यय ज्ञान। यह भी अप्रमाण है और आत्माके बारेमें कोई दृष्टि ही न दे, होगा कुछ, तो यह होता है अनध्यवसाय। तो इस तरहके भी बोध होते हैं और वे सब अप्रमाण हैं।

प्रमाणमें स्वपरनिर्णायकता—प्रमाणरूप तो वह ज्ञान होता है जिसमें अपना और अपूर्व पदार्थोंका निर्णय बसा हुआ है। जैसे यह ज्ञान किया कि यह चौकी है तो इस ज्ञानने दोनोंका निश्चय किया अपना भी और चौकीका भी। यह ज्ञान बिल्कुल सही है कि यह चौकी है; ऐसा जिस ज्ञानमें आया है वही ज्ञान चौकीका निर्णायक हो सकता है। स्वयं सोच लीजिये यह ज्ञान मैं पूर्ण सही हूं, ऐसा निर्णय बसा है कि नहीं ? यहाँ तो कर रहे हो सन्देह कि मैं जो चौकीको जान रहा हूं यह ज्ञान सच है कि झूठ है, यह तो हो जाय सन्देह और कहें यह कि यह चौकी ही है तो यह बात तो नहीं बन सकती। जब कभी ज्ञानमें मजबूती हो तो पदार्थोंका ज्ञान भी कहलायेगा। तो स्वका भी निश्चय करे और नवीन अर्थका भी निश्चय करे वह ज्ञान प्रमाण होता है।

संशय ज्ञानके उत्पादक कारणपर प्रकाश— हे संशय ज्ञानके स्वरूपके विरोधको। तुम संशयज्ञानका अभाव कहते हो क्या इसलिये संशय ज्ञानका अभाव है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि संशय ज्ञानको उत्पन्न करने वाले कारण कुछ नहीं है, क्या इस कारणसे तुम संशय ज्ञानका अभाव कहते हो ? या इसलिए कहते हो कि संशयज्ञानका साधारण खास कोई स्वरूप नहीं है ? या इस कारण कहते हो कि संशयज्ञानका कोई विषय नहीं है ? बात प्रकरणमें यह है कि कोई दार्शनिक यह कह रहा है कि संशयज्ञान कोई चीज ही नहीं है। तो उससे स्याद्वादी पूछ रहे हैं कि संशयज्ञानको उत्पन्न करने वाले कोई कारण हैं इससे संशयका अभाव बताते हो ? यह बात तुम्हारी ठीक नहीं है क्योंकि संशयज्ञान को उत्पन्न करने वाले कारण मौजूद हैं। जिनको थोड़ा बहुत मालूम हो, जिसे संस्कार बना हो ऐसा जानने वाला पुरुष जब कभी ज्ञेय पदार्थोंके सम्बन्धमें कुछ तो ऐसी बात जानता है जो अनेक पदार्थोंमें समान है और जो खास विलक्षण है उसे जानता न हो तो मिथ्यात्व होनेपर संशयज्ञान उत्पन्न होता है। इसका मतलब यह है कि जैसे पड़ी तो है रस्सी और हम जान रहे हैं कि यह साँप है। तो ऐसा संशयात्मक ज्ञान होनेका कारण क्या है ? उसके कारण हैं दो—एक तो ऐसी चीज हमारे ज्ञानमें आ रही है जो बात रस्सीमें भी घटित हो और साँपमें भी घटित हो। जैसे टेढ़ा मेढ़ा पड़ा होना, उतना ही मोटा पतला पड़ा होना। इस तरहका जो समान धर्म है, आकार है उसका तो हो रहा है ज्ञान और रस्सीका जो खास लक्षण है न, वह ज्ञानमें आ रहा और साँपका जो खास लक्षण है न वह ज्ञानमें आ रहा तो ऐसी स्थितिमें संशयज्ञान उत्पन्न होता है। तो उत्पादक कारण तो सिद्ध हो गए, फिर इस विकल्पसे तो संशयज्ञानके कारणका अभाव नहीं कह सकते।

संशयज्ञानका असाधारण और विषय– संशय ज्ञानका कोई विशेष स्वरूप नहीं है ऐसा भी नहीं कह सकते क्योंकि संशय ज्ञानका स्वरूप है यह जिसमें चलित प्रतिपत्ति (बोध) हो वह है संशय ज्ञान। जिस ज्ञानमें बोध चलायमान हो, ऐसा है या ऐसा है उस ज्ञानको संशय ज्ञान कहते हैं। यह भी नहीं कह सकते कि संशय ज्ञान का कोई विषय नहीं है। विषय कैसे नहीं है। जैसे मान लो ब्रह्म मुहुर्तमें कोई पुरुष घूमने जाया करता है। किसी दूसरी गलीसे चला गया तो बहुत दूरपर एक ठूठ खड़ा हुआ था। उस ठूठके देखकर उस पुरुषको यह शङ्का हुई कि यह ठूठ है या आदमी है तो उस संशय ज्ञानमें विषय क्या आया सो सुनिये। ठूठ रूपसे जो निश्चय न किया जा सके ऐसा जो सामान्य धर्म है, कुछ ऊँचासा उठा होता है कुछ मोटासा है, ऐसी जो ऊर्द्धता सामान्य है वह संशयज्ञानमें विषयभूत है। संशयज्ञानमें आया क्या सो बतला रहे हैं। जैसे रस्सीको सांप है या रस्सी है यह जाना तो वह आकार जो न तो रस्सी रूपसे अनुभव किया जा सके, न सर्प रूपसे अनुभव किया जा सके ऐसा जो सामान्य धर्म हैं वह ज्ञानमें आया। तो संशय ज्ञान है कोई चीज ? और उसके निराकरण के लिये जो निर्णायक ज्ञान है वह प्रमाण है यह बताया गया है।

सन्देहसे अस्थिरता – देखिये जब तक अपने आपको अपने आपमें अपने आप

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का यथार्थ निर्णय न हो तब तक जीवको विश्राम नहीं मिलता। जीवका स्वरूप ज्ञान है, और ज्ञानके बारेमें जब तक वह संदेहमें रहेगा तब तक उसे विश्राम नहीं मिलता। वह अपने आपमें फिट ही नहीं बैठ पाता, यत्र तत्र उछलता रहता है और इस झूमसे उसे आकुलता होती है। लोग यद्यपि घर गृहस्थीमें रहकर बहुत–बहुत उल्टा निर्णय बनाये हुए हैं पर उनके बीच–बीचमें अनेक संशय जो संशयका प्रकट रूप तो नहीं रखते, किन्तु हो जाया करते हैं। जैसे घरका सम्बन्ध, परिजनका सम्बन्ध हमें कल्याणरूप हैं या नहीं, इस बारेमें मोही जीवका यह निर्णय है कि घरमें रहना ही हमारा कल्याणकारी है। घरसे ही मुझे कल्याण मिलता है, घरसे ही सुख मिलता है, ऐसा निर्णय किए हुए तो हैं, पर बीच–बीच कुछ उसमें निर्णयकी शिथिलता सी बनी ही रहती है। कितना ही तीव्र मोही हो फिर भी उसको कभी–कभी अपने इस ज्ञानमें संदेह हो जाता है। और जिस ज्ञानमें सही निर्णय न बने, अव्यक्तरूपमें भी संदेह हो वहाँ आत्मा अपने आपमें चाहे उल्टा हो चाहे सीधा हो फिट नहीं बैठ पाता, और जो झूठे ज्ञान हैं उन ज्ञानोंमें कहां तक निःसन्देह रह सकेंगे। जो यथार्थ तत्त्व है उसके परिज्ञानमें ही पूर्ण निःसन्देहता रहती है।

तत्त्ववेदीकी निःशङ्कता—जिस तत्त्ववेदी पुरुषने अपने आत्माका यथार्थ निर्णय कर लिया है मैं एक देखनजाननहार सद्भूत वस्तु हूँ, परिजनसे, देहसे, रागादिक विकारोंसे भी निर्मल केवल मेरा ज्ञानस्वरूप है और मेरी दुनिया मात्र उतनी ही ही है जो मैं अपने आपमें अपने ज्ञानसे कुछ भी निर्णय और विचार करता रहता हूँ। मेरी दुनिया इतनी मात्र है। बाहरमें घर वैभव परिजन इज्जत यह मेरी दुनिया नहीं है। मैं केवल एक हूं, अकेला हूँ, और इस अकेलेकी केवल अकेली ही परिणति हैं यह स्वतंत्र है. ऐसे ही प्रत्येक जीव स्वतन्त्र हैं और प्रत्येक अणु स्वतन्त्र है। ऐसा जिसने द्रव्यका निर्णय किया है उसको फिर लोकमें आकुलता नहीं रहती है। कुछ काम बिगड़ गया, कुछ चीज टूट फूट गयी, कुछ आर्थिक घाटा हो गया, कैसी भी परिस्थितियाँ आयें, वह तो वहाँ यह यह जानता रहता है कि यह बाह्यमें ऐसा परिणमन होता है। मेरा यह मैं पूर्ण सुरक्षित हूँ, मुझमें न कोई गुणसे बाह्यसे आता है और न मेरेसे कोई गुण बाहर निकलकर जाता है। मैं वहीका वही परिपूर्ण रहता हूँ। ऐसा जिसका अपने बारेमें यथार्थ निर्णय है उस पुरुषकी महिमा समयसारमें एक कलशमें बतायी है कि सम्यग्दृष्टि पुरुष ही ऐसा साहस कर सकता है कि ऐसा भी बज्र गिरे, ऐसी अनेक घटनाएं हों कि जिनसे तीन लोकके जीव अपना रास्ता छोड़कर अन्यत्र हट जायें तो भी सम्यग्दृष्टि जीव सदैव निशंक रहता है।

तत्त्ववेदीकी निःशङ्कताका कारण—सम्यग्दृष्टि जीवके निःशङ्क रहनेका कारण यह है कि उसे अपने आपके बारेमें कोई सन्देह नहीं है। मैं मर न जाऊँ, मेरा कहीं गुजारेमें विघ्न आये ऐसे कोई भी सन्देह नहीं हैं। गुजारेका अर्थ क्या है ? कुछ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परिणमन होना, समय व्यतीत होना यहीं तो गुजारा है। तो जो पदार्थ सत् है, क्या कोई भी सत् ऐसा मिला कि जो बिना गुजारेके रहता हो। प्रत्येक पदार्थ हैं और निरन्तर परिणमते रहते हैं, भेद तो नहीं होता। यहां कदाचित् मैं इस घरमें नगरमें इस बीच न रहा तो इतने मात्रसे मैं तो नहीं मिट गया। मैं कहीं अन्यत्र रहूँगा, मेरा बिगड़ा क्या ? शायद यह कहो कि बड़े परिश्रमसे मकान बनाया, बड़े परिश्रमसे इतना वैभव इकट्ठा किया, यह तो छूट जायगा। अरे मरनेके बाद इससे भी कई गुना वैभव मिल सकता है बिना कमाये। तो समझ लो कि यहाँ भी कमाता कौन है ? यों मिली है और आगे भी कई गुना विभूति यों मिल जायगी। जिसके पास मूल रकम है उसे कमी कहीं न रहेगी। वह मूल रकम है अपने परिणामोंकी निर्मलता और समस्त सही–सही ज्ञानका बनाये रहना। यह मूल रकम अपनी सही अबाधित रहे तो जहां जावो वहीं आनन्द है। ऐसी मूल रकमकी यहाँ बात कही जा रही है कि आत्मा ज्ञान स्वरूप है और वह ज्ञान किस–किस प्रकारका हो तो प्रमाण कहलाता है।

संशयस्वरूपसिद्धिके बाद विपर्ययज्ञानकी चर्चा निर्णयके प्रसंगमें सर्वप्रथम यह तो निर्णय होना ही चाहिए कि निर्णय करने वाला ज्ञान किस स्वरूपका होता है, उस हीं को प्रमाण कहते हैं। लोकव्यवहारमें भी जब प्रमाण मिल जाता है तब उसकी पुष्टि करते कि यह बात ऐसी ही है और इसका यह प्रमाण है। प्रमाणका स्वरूप बताया है —जो स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय कराये वह ज्ञान प्रमाण होता है। उस सम्बन्धमें व्यवसायात्मक शब्दके विवरणमें यहाँ कुछ दार्शनिक यह कह रहे हैं कि जब संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय नामके कोई ज्ञान ही नहीं होते तो फिर किसका निराकरण करनेके लिए तुम व्यवसायात्मक कह रहे हो ? इसमें संशयका स्वरूप तो सिद्ध कर दिया था अब विपर्यय ज्ञानके सम्बन्धमें चर्चा चलेगी।

प्रतिभासित अर्थकी सत्ता न होनेका हेतु देकर विपर्ययज्ञानको असिद्ध करनेका प्रयास—कोई दार्शनिक यह कहता है कि विपर्यय ज्ञान कुछ चीज नहीं है, वह तो अख्यातिरूप है अर्थात् जहाँ पदार्थ कुछ भी न आये ख्याति न हो उसका नाम विपर्ययज्ञान है, और इस विपर्ययज्ञानका कोई स्वरूप नहीं है। और, अपने पक्षमें यह दार्शनिक युक्ति देता है कि अच्छा बतावो जैसे मारीचिकामें जलका ज्ञान हुआ, जो रेतीली भूमि है, बाहरकी चमकती हुई रेतको देखकर प्रायः यह ख्याल होता है कि यह जल है तो वहाँ जो जलका ज्ञान हुआ उस ज्ञानका आलम्बन क्या है ? उस ज्ञानमें विषय क्या आया उसमें आलम्बनीभूत जल सत्ता है क्या ? यदि इस ज्ञानमें उस ज्ञानकी विषय जल आया, यदि ऐसा कहते हो तो वहां तो जल है ही नहीं। और, अगर जल आ गया याने उसके आलम्बनभूत जलकी सत्ता भी है तो वह विपर्ययज्ञान क्यों रहेगा, वह तो सच्चा रहेगा। पथरीली जमीनको निरखकर यह जल है ऐसा जो ज्ञान हुआ उस ज्ञानका आलम्बनभूत जो कुछ है वह अगर जलकी सत्तारूप है तो वह ज्ञान विप-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

र्यय नहीं रहा। जैसे रस्सी पड़ी है और उसमें यह सांप ही है ऐसा ज्ञान बन गया तो बतलावो इस सर्पका प्रतिभास करने वाले ज्ञानमें आलम्बनीभूत विषयभूत सर्पकी सत्ता है क्या ? यदि सर्पकी सत्ता है और फिर सर्पका हो ज्ञान बना तो वह शुद्ध ज्ञान कहलायगा, विपर्ययज्ञान कैसा होगा ? इसीप्रकार मरीचिकामें जिस जलका अवभासन हुआ उसका आलम्बनीभूत यदि सत्तात्मक जल है तो वह विपर्यय नहीं रह सकता।

अभाव विषय न होनेका हेतु देकर विपर्ययज्ञानको असिद्ध करनेका प्रयास—क्या है उस विपर्ययज्ञानमें विषयभूत ? यह पूछा जा रहा है ? मरीचिकामें जलका प्रतिभास करने वाला जो ज्ञान हो उस ज्ञानका यदि यह कहेंगे कि जलका अभाव विषय है तो यह तो प्रतीतिमें आता ही नहीं है। विपर्ययज्ञान विधिपरक होता है, निषेधपरक नहीं होता। किसी भी पदार्थमें उल्टा ज्ञान किया जाय तो किसीके हाँ रूप ही तो ज्ञान हुआ ना, न रूपज्ञान नहीं हुआ। रस्सीमें सर्पका ज्ञान किया तो सर्पकी विधि ही तो बतायी, या यह ज्ञान हुआ क्या कि सर्पका अभाव है। तो विपर्ययज्ञान विधिरूपसे ही प्रवृत्त होता है इस कारण यह भी नहीं कह सकते कि विपर्ययज्ञानमें विषय जलका अभाव है।

अप्रतिभासका ग्रहण अशक्य होनेका हेतु देकर विपर्ययज्ञानका अभाव बतानेका प्रयास—यदि कहें कि रेतीली जमीनमें जलका जो प्रतिभास होता है ऐसे विपर्ययज्ञानमें रेतीली जमीन विषय है। तो यह वो प्रतीतिमें आ नहीं रहा। वहां तो जल ही जल समझमें आ रही हैं। जैसे रस्सीमें साँपका ज्ञान किया तो इस विपर्ययज्ञानमें विषयभूत क्या रस्सी आ रही है ? नहीं आ रही है। अगर रस्सी विषयमें आ जाय तो उसका वह ज्ञान विपर्यय हो ही नहीं सकता। विपर्ययज्ञानका कोई विषय ही नहीं बैठ पाता, अतएव विपर्यय ज्ञान कुछ चीज नहीं है ऐसा एक दार्शनिक कह रहा है। भैया ! विपर्ययज्ञानका भी प्रतिषेध करनेकी इसे फिक्र क्यों पड़ी ! यों पड़ी कि प्रमाणका स्वरूप नहीं बन सके। प्रमाणका स्वरूप है जो संशय, विपर्यय और अनध्यवसायका प्रतिषेध करे। तो इस दार्शनिकका कहना है कि प्रतिषेध्य, विपर्ययज्ञान है ही कुछ नहीं, निषेध किसका करते ?

अन्याकारसे अन्यका ग्रहण अशक्य होनेका हेतु देकर विपर्ययज्ञानका अभाव सिद्ध करनेका प्रयास—शंकाकार ही कह रहा है प्रतिशंकाकारसे कि वहाँ जलके आकारसे रेतीली जमीनका ग्रहण हो रहा है यदि ऐसा कहो तो यह बात भी ठीक नहीं, क्योंकि जल बिल्कुल पृथक् चीज है और रेतीली जमीन बिल्कुल पृथक् चीज है। क्या कभी ऐसा हो सकता है कि किसी पृथक् वस्तुके आकारसे किसी पृथक् वस्तुका ज्ञान हो जाय ? क्या घड़ेके आकारसे घड़ेसे भिन्न कपड़े आदिकका भी ज्ञान हो जाता है ? क्या कोई कपड़ा घड़ेके रूपसे भी प्रतिभास होता है ? अन्यके आकार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

से अन्यका ग्रहण नहीं होता है। तो विपर्ययज्ञानमें भी यह बात नहीं बन सकती कि चलो जलके आकारसे रेतीली जमीनका ग्रहण हो जाय। जैसे रस्सीको साँप जाना तो इस विपरीत ज्ञानमें क्या सर्प सर्पके आकारसे रस्सीका ग्रहण हो रहा है? शंकाकार इसका प्रतिषेध कर रहा है। यद्यपि कोई तीसरा आदमी सुने तो वह ठीक कहेगा कि हाँ सर्पके आकारसे रस्सीका ही तो ग्रहण हो रहा है, किन्तु जो जानने वाला है उसके ज्ञानमें तो रस्सीकी सुध भी नहीं है कि यह रस्सी है। विपरीत ज्ञानमें जिस पदार्थके बारेमें उल्टा ज्ञान चल रहा है उस पदार्थकी सुध भी नहीं रहती। संशयज्ञानमें तो कभी उसकी भी सुध हो सकती है कि यह रस्सी है या साँप है। विपरीतमें तो यथार्थ वस्तुकी सुध होती ही नहीं है। कभी–कभी तो संशयज्ञानमें भी पदार्थकी सुध नहीं होती। जैसे पड़ी तो है सीप और संदेह यह करें कि यह चाँदी है कि काँच है, सीपकी बात ही न करे ऐसा भी संशय हो सकता है पर विपर्ययज्ञानमें तो पदार्थकी सुध होती ही नहीं है। किसी उल्टी चीजका ज्ञान होता है, तो जैसे घटके आकारसे पट आदिक का ग्रहण नहीं देखा जाता इसी प्रकार जलके आकारसे रेतीली जमीनका ग्रहण नहीं होता।

निरालम्बन बताकर विपर्ययज्ञानका अभाव सिद्ध करनेका पक्ष— विपर्ययज्ञानके विषयकी बात कही जा रही है। विपर्ययज्ञानका कोई विषय ही नहीं बनता। तो ये जल आदिक विपर्ययज्ञान निरालम्बन हैं। इनका कोई आधार नहीं है। निराधार ज्ञान कोई चीज ही नहीं है, फिर क्यों प्रमाणका यह स्वरूप बना रहे हो कि जो संशय, विपर्यय और अनध्यवसायका विरोधी हो ऐसा निश्चयात्मक ज्ञान प्रमाण होता है। इस प्रकार विपर्यय ज्ञानके स्वरूपका खण्डन करने वाला यह दार्शनिक विपर्ययज्ञानका स्वरूप कह रहा है।

विपर्ययज्ञान न मानकर अख्यातिमात्र माननेसे व्यपदेशके अभावका प्रसङ्ग—इसपर आचार्यदेव कहते हैं कि तुम्हारी ये बातें लगती तो बड़ी सुन्दर हैं पर ये तभी तक सुन्दर लग रही हैं जब तक इनपर कुछ विचार नहीं किया जाता। देखो यदि विपर्ययज्ञान कुछ नहीं होता तो किसी भी विशेषरूपसे जो व्यपदेश किया जा रहा है उसका अभाव हो जायगा। नहीं तो विपर्ययज्ञान तो गुमसम रहा, कुछ कल्पना ही क्यों उठाते? किसी भी पदार्थमें किसी दूसरे पदार्थ विषयक विकल्प भी हो तो व्यपदेश तो कुछ हुआ, नाम तो कुछ धरा गया। व्यपदेशका मोटा अर्थ है कुछ नाम तो धरना। जिस ज्ञानमें कुछ भी प्रतिभास न हो वह ज्ञान किस विशेषण द्वारा आप व्यपदिष्ट करेंगे? जिस ज्ञानमें पदार्थ नहीं झलक रहा उस ज्ञानका कुछ व्यपदेश नहीं बन सकता, उउका नाम ही नहीं धरा जा सकता है। विपर्ययज्ञानमें कुछ प्रतिभास हो रहा है तब उसका नाम धरा जा रहा है कि यह विपर्ययज्ञान है। तुम उसे अख्याति नामसे कहते हो कि यह अख्याति है विपर्यय कुछ नहीं है अर्थात् पदार्थ झलक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में नहीं आता, यह विपर्ययज्ञान तुम बता रहे हो। तो कुछ तो व्यपदेश किया। इससे ही सिद्ध हो गया कि वह कुछ चीज तो है। चाहे उसे अख्याति नामसे कहो चाहे विपर्यय नामसे कहो।

विपर्ययज्ञानका परिणाम—परपदार्थ है कुछ, और जाननेमें आया कुछ. ऐसा हुआ करता है, इसको कोई मना नहीं कर सकता। और- इस ही आधारपर तो यह सारा संसार बन रहा है। यह सब विपर्ययज्ञानका ही तो फल है कि इतने प्रकार की योनियोंमें जन्ममरण ये सब हो रहे हैं तो ये सब विपर्ययज्ञानसे ही हो रहे हैं। आत्मा तो है ज्ञानानन्दस्वरूप और मान रहे देहरूप, मान रहे है अपनी पोजीशनरूप तो यह विपर्ययज्ञान होना इसीपर तो यह सारा संसार टिका हुआ है। देखिये यह सारा संसार उल्टे ज्ञानपर टिका है। सही ज्ञानसे तो संसार मिटता है। कितने ही लोग कहने लगते कि साहब! साधु, त्यागी व्रती अगर सभी लोग बन जायें तो फिर संसार रहेगा कैसे ? हम तो संसारपर बड़ी करुणा करके आशक्त हो रहे हैं। यों संसारके प्रति लोग अपनी बड़ी दया दिखाते हैं। (हंसी) तो यह संसार उल्टे ज्ञान पर टिका हुआ है। तुम उस विपर्यय ज्ञानको क्या माना करते हो ? विपर्यय ज्ञान है कुछ विपर्ययज्ञान है कुछ चींज और जो ज्ञान विपर्यय ज्ञान विरोधक हो अर्थात् विपर्यय ज्ञानका निषेध करे ऐसा निर्णय करने वाला ज्ञान सच्चा ज्ञान है और वह प्रमाणभूत है।

विपर्यय ज्ञान न माननेपर सुप्त और भ्रान्तमें विशेषताके अभावका प्रसंग—यदि विपर्ययज्ञान नामकी कुछ चीज न हो तो एक विपरीत ज्ञान करने वाला पुरुष है और एक सोया हुआ पुरुष है। इन दोनोंमें कुछ फर्क है या नहीं सो बताओ ? यदि अरख्यतिका ही नाम विपर्ययज्ञान हो अर्थात् कोई पदार्थ झलकमें न रहे इसको यदि तुम विपर्ययज्ञान कर रहे हो तो जो सोया हुआ मनुष्य है उसकी भी अरख्याति बन रही है अर्थात् कुछ उसकी सुधमें ही नहीं है और ऐसे ही मानते हो इस जगनेवाले विपर्ययज्ञान करनेवाले पुरुषको कि वहाँ भी अरख्याति है, मानो कुछ पदार्थ झलकमें नही आ रहे ऐसी स्थिति उसकी भी मानें तो फिर उन दोनोंमें फर्क क्या रहा ? और फर्क स्पष्ट सबको विदित है। सोया हुआ पुरुष और उल्टा ज्ञान करने वाला पुरुष क्या ये दोनों एकसे बेहोश हैं ? बेहोश हुएको तो कुछ भान ही नहीं और उल्टा ज्ञान कहने वालेको कुछ भान तो है। तो विपर्ययज्ञान है एक ज्ञानका रूप और वह है झूठा। उसका निषेध करनेके लिए व्यवसायात्मक शब्द दिया है कि जो ज्ञान निश्चयात्मक हो, संशय, विपर्यय और अनध्यवसायका खण्डन करने वाला हो वह ज्ञान प्रमाण होता है।

सुप्तसे भ्रान्तमें प्रतिभासमान अर्थकी विशेषता—सोये हुए मनुष्यसे विपरीत ज्ञान करने वाले मनुष्यमें कुछ विशेषता है या नहीं सो बतावो जरा ? एक आदमी सोया हुआ है खूब गुर्राटे ले रहा है, मुर्दा जैसा लग रहा है, हलन चलन जरा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी नहीं और एक पुरुष नहीं बैठा हुआ रस्सीको सांप जान रहा है, यह विपरीत ज्ञान कर रहा है तो इस विपरीत ज्ञान करने वालेमें सोये हुए पुरुषकी अपेक्षा कुछ विशेषता है या नहीं। लगता है ना कुछ फर्क। वह क्या फर्क है ? वहाँ कुछ प्रतिभास ही नहीं हो रहा सोये हुएमें और इस जगते हुएको यद्यपि रस्सीमें सांपका ज्ञान हो रहा है। तो प्रतिभासमान अर्थके सिवाय और विशेषता क्या बतावोगे ? यहीं तो बतावोगे कि सोये हुए पुरुषमें कुछ प्रतिभासकी विशेषता नहीं है और इस पुरुषमें कुछ प्रतिभास हो रहा है यह विशेषता है। वो जो कुछ भी प्रतिभास हो रहा हो वही विपर्ययज्ञानका आलम्बन है, वह ज्ञान सत्य है या असत्य है यह तो बादके निर्णय करनेकी चीज है। लेकिन विपर्यय ज्ञानमें विषय क्या है ? तो जो कुछ भी प्रतिभास हो रहा हो वही उसका विषय है। तो यह कहना तुम्हारा अयुक्त है कि विपर्यय ज्ञान कुछ चीज नहीं है, अख्यातिका ही नाम विपर्यय है।

विपर्यय ज्ञानमें भी दृढताकी वृत्ति—अख्यातिका अर्थ है अ मायने नहीं, ख्याति मायने झलक। पदार्थका कुछ बोध न हो उसका नाम अख्याति है। सो विपर्यय ज्ञान अख्याति रूप नहीं है, किन्तु यहाँ भी उटकर कोई चीज ज्ञानमें आ रही है अब जो ज्ञानमें आ रहा वह वैसा नहीं है यह बात एक अलगसे सिद्ध करेंगे पर विपर्यय ज्ञान कुछ चीज है और उसमें प्रतिभास हो रहा है कुछ न कुछ। जैसा सम्यग्दृष्टि का ज्ञान मजबूत है ऐसा ही विपर्यय ज्ञान करने वालेका वह विपर्यय ज्ञान मजबूत है। जैसे सम्यग्दृष्टि पुरुष अपने ज्ञानमें कोई शङ्का नहीं रखता ऐसे ही उल्टा जानने वाला पुरुष अपनी जानी हुई बातमें रंच शङ्का नहीं रखता। तुम ऐसे ठोस ज्ञानका कैसे निषेध कर रहे हो। विपर्यय ज्ञान कुछ है। विपर्यय ज्ञानीको कोई कितना ही समझाये तो भी वह अपना लक्ष्य नहीं छोड़ता। उसके तो बड़ा तेज निश्चय हो रहा है। इतनी बात जरूर है कि जैसा पदार्थ है तैसा उसका ज्ञान नहीं है बस इतनी सी गलतीपर जीवकी इतनी बड़ी विडम्बना हो रही है।

विपर्यय ज्ञानमें दृढ़ताकी वृत्तिका एक दृष्टान्त— एक पुरुष किसी गाँव को जा रहा जा, बीचमें एक दूसरा गाँव पड़ा। उस गांवमें एक बढ़ई बड़ा मजाकिया था। उस मुसाफिरने उस गांवका रास्ता पूछा। रास्ता तो था गांवसे पूरब दिशाको और बता दिया दक्षिण दिशामें। साथ ही यह भी कह दिया कि इस गांवके लोग मजाकिया हैं, आगे जाकर सो उनसे रास्ता पूछोगे तो वे सब तुम्हें गलत रास्ता बतावेंगे। उनकी बात तुम न मानना। तुम तो आगेके चौराहेंसे दक्षिण दिशाको एक रास्ता जा रहा है उससे चले जाना। वह जब चौराहेके पास पहुँचा तो लोगोंसे रास्ता पूछा। सभी लोगोंने उससे यही कहा कि उस गांवका रास्ता तो इस गांवसे पूरब दिशाको जा रहा है इधरसे उस गांवका रास्ता नहीं है। उसकी समझमें आ गया कि वह बढ़ई सच कहता था कि इस गांवके लोग बड़े मजाकिया है। आखिर उस मुसा-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

फिरने किसीकी बातपर ध्यान न दिया और जो रास्ता दक्षिण दिशाको जा रहा था उसीसे चल दिया। जब बड़ी दूर जाकर कोई गांव मिला तो वहांके लोगोंने बताया कि तुम यहां कहां आ गये। उस गांवका रास्ता तो तुम जिस गांवसे अभी गुजर कर आ रहे हो उस गांवसे पूरब दिशाको जाता है। वहां लौटकर जावो तब उस गांवसे पूरब दिशाको जो रास्ता आ रहा है उससे चले जाना।

विपर्ययज्ञानमें दृढ़तापूर्ण हठ— तो भैया ! विपर्यय ज्ञानमें भी निर्णय जैसी हठ रहती है। वह उसके खिलाफ कोई दूसरी बात मानना ही नहीं चाहता। इन मिथ्यादृष्टि जीवोंको एक ऋषिने क्या, पचासों ऋषियोंने समझाया है। ये जो ग्रन्थ हैं ये जीते जागते ऋषी ही तो हैं। उनकी यह कृति है, जैसे लोकमें कहते हैं किसीने कुछ विशिष्ट उपकारका काम हुआ तो लोग कहते हैं ना, कि वह यहाँ रहा नहीं, पर वह अमर है। ऐसे ही वे ऋषी जन अब रहे नहीं, पर उनकी इन कृतियोंसे वे अमर हैं। अनेकों ऋषियोंने समझाया कि हे आत्मन् ! तू अपने आपको पहिचान, यह घर तेरा घर नहीं है, तेरा घर तेरा अभिन्न स्वरूप आत्मप्रदेश है। अनेक ऋषियोंने समझाया, तू देहसे भी न्यारा है, इन विषयोंसे तेरा कल्याण नहीं है, ये विषय दुःखके देने वाले हैं लेकिन ये मिथ्यादृष्टि किसीकी भी नहीं मानते, और शायद यह भी सोचते हों कि ये सब मुझे बहका रहे हैं। हमारे सब प्रकारके बढ़िया साधन हैं, स्त्रीपुत्रादिक आज्ञाकारी हैं इन ऋषि संतोंको किसी बातकी हमसे ईर्ष्या हो गयी है सो ये हमारे बिगाड़की बात कह रहे हैं।

विपर्ययज्ञानमें निरालम्बनता असिद्ध होनेसे विपर्ययज्ञानके स्वरूपकी सिद्धि और विपर्ययज्ञानके परिहारकी शिक्षा—विपर्यय ज्ञानमें तो ऐसी दृढ़ता रहती है, रहती है विपरीत। जो विपर्ययज्ञान इतनी हठ रखता है उस विपर्ययज्ञानके स्वरूपको तुम मना कर रहे हो कि विपर्ययज्ञान कुछ चीज नहीं है, केवल अख्याति मात्र है। आख्यातिका ही नाम विपर्यय नहीं है, किन्तु तत्त्व तो हो कुछ और प्रतिभासमें आया अन्य कुछ, ऐसा प्रतिभासमें आने वाला जो कुछ भी विषय है वही विपर्ययज्ञानका आलम्बन है। विपर्ययज्ञान निरालम्बन नहीं है, विपर्यय ज्ञान है और उस विपर्ययज्ञानका निषेध करनेके लिए व्यवसायात्मक शब्द दिया है जो ज्ञान स्व और अपूर्व अर्थका निर्णय कराये सो ज्ञान प्रमाण है, अनिर्णयात्मक ज्ञान प्रमाण नहीं होता और विरुद्ध भी निर्णायक ज्ञान करिये तो वह ज्ञान भी प्रमाण नहीं होता। तात्पर्य यहां यह है कि जो पदार्थ जहाँ जैसा है उसको वैसा समझलें तो यह सम्यक् प्रकाश आपके संसार-संकटोंका विनाश करेगा, जो विपरीत ज्ञान है वह तो संसारमें रुलानेका ही कारण है, उसे छोड़ें और सम्यग्ज्ञानका आश्रय करें।

अख्यातिमात्रका अभिप्राय करके विपर्यय ज्ञानके निराकरण करनेका निराकरण—प्रमाणका स्वरूप है जो स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय कराये वह ज्ञान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रमाण है। इसके समर्थनमें इस तृतीय सूत्रमें यह बात बतायी गई है कि ऐसा समर्थ ज्ञान जो हितकी प्राप्ति और अहितका परिहार करनेमें समर्थ है। प्रमाणभूत है। वह ज्ञान निश्चयात्मक होता ही है क्योंकि वह संशय, विपर्यय और अनध्यवसायका परिहार करता है। यह स्पष्टतया स्याद्वाद सिद्धान्तमें बताया है इसका विरोध करना है जिस दार्शनिकको उसे कुछ न कुछ कहना तो चाहिए ही। तो इस प्रकरणमें एक दार्शनिक यह कह रहा है कि विपर्यय ज्ञान नामकी कोई चीज ही नहीं है फिर किसका निषेध किया जाय ? कैसे निर्णायक माने और किसे प्रमाण माना जाय। सो विपर्यय ज्ञानके स्वरूपके प्रतिषेधमें अख्यातिवादने अपना मंतव्य रखा था उसका तो निराकरण किया। अख्यातिका नाम तो विपर्ययज्ञान है नहीं। अख्यातिसे उसका मतलब है कुछ भी बात झलकमें नहीं आना सो ही विपर्यय है, किन्तु ऐसा तो है नहीं। कुछ न कुछ तो प्रतिभासमें आता ही है मात्र ज्ञानमें। जैसे रस्सीमें सांपका ज्ञान हो गया तो ज्ञाता को कुछ तो प्रतिभासमें आया है। क्या कुछ भी प्रतिभासमें न आये और वह उछले कूदे ? दूसरेको बुलाये, इतनी बड़ी कठिन कवायत अख्यातिसे हो जायगी। फसा पड़ा है और अहितकारी वस्तुको उसने समझा है कि यह है इसलिये डरता है। तो अख्यातिका नाम तो विपर्यय है नहीं।

विपर्ययज्ञान न मानकर असत्ख्याति मात्रके मन्तव्यपर विचार—अख्यातिका निराकरण सुनकर एक क्षणिकवानी, कोई सिद्धान्तवादी बड़े खुश होकर कह रहे हैं कि तुम्हारी बात कहाँ ठीक है ? अख्यातिका नाम तो विपर्यय नहीं है. मगर असत्ख्यातिका नाम विपर्यय है। असत्ख्यातिसे भाव इसका यह है कि कुछ सत् नहीं है, ऐसे असत्की ख्याति हो रही है। यद्यपि ऐसा कहना ज्यादा दोषयुक्त नहीं है क्योंकि जैसे पड़ी तो सीप है, जान चाँदी रहे हैं तो जिस चाँदीकी उन्हें ख्याति हो रही है, जानकारी हो रही है वह चाँदी तो है नहीं, वहाँ तो सीप पड़ी है। इसलिए असत् की तो ख्याति है किन्तु इसका मतलब असत्को पररूपसे मानकर कहनेका नहीं है सर्वथा असत् जो कुछ है ही नहीं उसकी ख्याति कही जा रही है। विपरीत ज्ञानमें भले ही रस्सीमें सर्पका ज्ञान हो और सर्प वहाँ है नहीं, मगर सर्प दुनियामें हुआ तो करते हैं। और, जो प्रतिभात होता है वह सर्पाकारेण प्रतिभात होता है न कि असत्रूपेण प्रतिभात होता है, सर्वथा असत्की ख्याति तो नहीं है, ख्यातिका अर्थ है जानकारी। जो नहीं है उसकी तो जानकारी है मगर उसमें भी कुछ प्रतिभात तो है। तो ऐसी असत्ख्याति यह नहीं मान रहा किन्तु सर्वथा असत् किसी रूपमें भी सत् न समझकर असत्ख्याति कह रहा है।

असत्ख्यातिवादीका अभिप्राय—इस शङ्काकारने अपना यह पक्ष पोषण किया है कि यद्यपि विपर्ययज्ञानमें कुछ प्रतिभात तो हुआ, अख्यातिवादी तो प्रतिभास भी नहीं मानता था। पर विपर्ययज्ञानमें जो प्रतिभासमान अर्थ है उसका यदि विचार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करें तो सत्रूप तो वह है नहीं। जैसे रस्सीमें सर्पका प्रतिभास हो तो वहाँ सर्प सत् तो है नहीं, सर्प तो मौजूद नहीं है। तो वह जब सत्रूप नहीं रहा तो असत्की ही तो जानकारी हुई, इसलिए असत्ख्यातिका नाम विपर्ययज्ञान है। विपर्ययज्ञान और कुछ चीज नहीं है। और भी समझो, जैसे चाँदीका भ्रम हुआ तो सीपके टुकड़ेमें सीपका तो प्रतिभास हो नहीं रहा, किन्तु चाँदीका प्रतिभास हो रहा है। और चाँदीका आकार वहाँ है ही नहीं उस स्थलपर। जहाँ विपर्यय ज्ञान बन रहा है वहां चांदी है नहीं। सो असत्की ही ख्याति हुई तो असत्की ख्यातिका ही नाम विपर्यय ज्ञान है। वह और कोई भिन्न चीज नहीं है जिसके निषेधके लिये तुम व्यवसायात्मक ज्ञानको प्रमाण बतला रहे हो।

असत्ख्यातिवादकी अयुक्तता—असत्ख्यातिवादके निराकरणमें इस समय जैन सिद्धान्तसे निराकरण न करके सांख्यसिद्धान्तसे निराकरण कर रहे हैं। ऐसा होता है कि जिस बातको स्याद्वाद भी न मानता हो, सांख्य भी न मानता हो तो सांख्योंसे ही कह दिया भाई तुम जवाब दे दो। तो सांख्योंकी ओरसे जो जवाब होगा वह कुछ कुछ इष्ट स्याद्वादको भी है क्योंकि जो पक्ष निराक्रियमाण हो रहा है उसका निराकरण दोनोंको इष्ट है। सांख्य भी असत्ख्याति नहीं मानता और स्याद्वाद भी सर्वथा असत्ख्याति नहीं मानता तो असत्ख्यातिके निराकरणमें कहा जा रहा है कि देखो यदि सर्वथा असत्की ख्याति कहते हो तो यह बात तो अत्यन्त अयुक्त है क्योंकि सर्वथा असत् है वह आकाश पुष्पकी तरह असत् ही है; उसका प्रतिभास क्या ? जैसे कोई मजाकमें औषधि बताता है कि देखो आकाशकी तो छाल लाना और धुवांके कोपल इनकी गोली बनाकर खा लेना तो क्या कोई ऐसा कर सकता है ? अरे कहाँ आकाश से छाल लायगा और कहाँ धुवाँके कोपल लायगा। तो जो असत् है उसका प्रतिभास ही कुछ नहीं है। और देखो यहाँ तो फिर भी कोंपल और छाल हुआ करते हैं, गल्ती इतनी ही तो कर रहे हैं कि जिसके छाल नहीं हो सकते, जिसके कोपल नहीं हो सकते उसके बता रहे हैं। मगर तुम असत्ख्याति वाले तो भूलसे असत्की बात बतला रहे हो। तो जो असत् है उसका आकाश पुष्पादिककी तरह प्रतिभास नहीं हो सकता, किन्तु प्रतिभास सो हो ही रहा है, यदि भ्रान्त ज्ञानके विषयका प्रतिभास न होता तो तुम निषेध किसका करते। तुम्हें भी होता है, तुम्हारे घरमें पड़ी रस्सी हो और साँप की जानकारी हो जाय तो तुम भी डरोगे। तो असत्ख्यातिका नाम विपर्ययज्ञान नहीं है।

सर्वथा असत्की ख्याति होनेकी असंभवताके कारण—यदि असत्की जानकारीका नाम विपर्यय ज्ञान कहोगे तो रसत् तो असत् ही है। असत् तो एक प्रकारका ही है, लेकिन विपर्यय ज्ञानमें तो विचित्र विचित्र भ्रम हो रहे हैं। तो असत्की यदि जानकारी है तो विचित्र विचित्र भ्रम न होना चाहिए। असत् तो एक ही तरह है। जैसे एक अभाव प्रमाणवादी हैं वैशेषिक, उनका यह कहना है कि जैसे आंखसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निरखा और पदार्थ दीखा, समझमें आया तो जैसे वह प्रमाण है अर्थात् प्रत्यक्ष प्रमाण है इसी तरह पदार्थका अभाव ज्ञात हो तो अभाव भी एक प्रमाण है। जल्दी सुननेमें तो कुछ सही सा जचता है कि हाँ अभाव भी प्रमाण होता है। किसीने कहा कि हाल मेंसे चौकी उठा लावो। वह हालमें गया, ढूंढ आया, चौकी न मिली तो लौटकर कहता है कि वहाँ तो चौकी नहीं है, चौकीका अभाव है। तो तब वह पूछता है कि तुमने अच्छी तरह देखा था कि चौकीका अभाव है? वह कहता है हाँ हमने खूब देखा वहाँ चौकीका अभाव है। तो यह यो बतावो जरा कि चौकीका अभाव भी क्या आंखोंसे दिख जाता है? वहाँ चौकी रहित हाल देखा इसका नाम चौकीका अभाव है। यही सिद्धान्त है किन्तु चौकीका अभाव चौकी रहित हालके सद्भावरूप न माना जाय फिर प्रमाण कहो तो यह बात अयुक्त है। किसीसे तुम कहो देखो यह घड़ी कितनी अच्छी है। दिखा तो रहे हैं चस्माघर और कहते हैं कि देखो यह घड़ी कितनी सुन्दर बनी है। तो आप कहेंगे कि कहाँ है यह घड़ी। घड़ी असत् है तो इस प्रकरण में घड़ीका अभाव चस्माघरके सद्भावरूप पड़ा है, जिसमें हम घड़ीका आरोप कर रहे हैं। वह वस्तु चस्मा घर है तो घड़ीका अभाव चस्माघरके सद्भावरूप पड़ा। सर्वथा अभाव कोई वस्तु नहीं है। इसी प्रकार या असत्ख्यातिबादी सर्वथा असत्की ख्याति करना चाहता है कि विपर्यय ज्ञानमें सर्वथा असत्की जानकारी हुई।

असत्ख्यातिके प्रतिविधानमें भ्रान्तिके नानात्वमें दो विकल्पोंसे प्रश्न— यहाँ उसका प्रतिविधान कह रहे हैं कि जो सर्वथा असत् है उसका प्रतिभास नहीं हो सकता। और सर्वथा असत्का प्रतिभास भी हो तो वह एकरूप होगा। अभाव अभाव सब एकरूप है। चाहे घड़ीका अभाव कहो चाहे मनुष्यका अभाव कहो सब एक रूप हो जायगा। और एक रूप हो जानेसे यह भिन्न भिन्न विपर्यय ज्ञान न होना चाहिए। होता है ना? किसीको सीप चांदी जची, किसीको सीप कांच जची। इस ही आत्मा को कोई शरीर मानता है तो कोई एक प्रथक् जीव मानता है, कोई मन मानता है, कोई ईश्वरका अंश मानता है तो कोई ईश्वरका समग्र अन्तः स्वरूप मानता है। उनमें कुछ सत्य है, कुछ असत्य है तो विचित्र प्रतिभास तो हुआ किसी पदार्थके सम्बन्धमें, यदि असत्की जानकारीका ही नाम विपर्ययज्ञान होता तो भिन्न-भिन्न भ्रम न होना चाहिए था, क्योंकि बतावो कि असत्की ख्यातिमे असत्ख्यातिवादके माननेपर ये जो भिन्न-भिन्न नाना भ्रम हो रहे हैं, विचित्र ज्ञान हो रहे हैं यह एक पदार्थगत विचित्रता ज्ञात होती है या ज्ञानगत विचित्रता ज्ञात होती है?

असत्ख्यातिवादमें भ्रान्ति वैचित्र्यके अभावका प्रसङ्ग— जैसे पड़ा तो है है भोडल और उसको देखकर आपने तो यह ज्ञान किया कि यह सीप है, दूसरेने यह ज्ञान किया कि यह कांच है, तीसरेने यह ज्ञान किया कि यह चाँदी है तो ये जो नाना तरहके विपरीत ज्ञान हो रहे हैं विचित्र विचित्र जो बोध हो रहे हैं ये पदार्थकी विचि-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

त्रताएँ ज्ञानमें आ रही हैं या ज्ञानकी विचित्रता ज्ञानमें आ रही है ? पदार्थकी विचित्रता तो असत्ख्यातिवादके अभिप्रायसे भ्रान्त ज्ञानमें आ नहीं सकती क्योंकि तुमने माना असत्ख्यातिको और असत् एक ही तरहका है। अर्थ तो वहाँ मौजूद ही नहीं, तो असत्में विचित्रता क्या ? जो चीज हो उसमें तो नानापन है और न का नानापन क्या ? जैसे कोई पुरुष कहे कि देखो हमने जान लिया कि इन बच्चोंमें चोर कौन है। कोई पूछे अमुक चंद है ? न, अमुक लाल है ? न अथवा अमुक प्रसाद है ? न, तो सब में न का उत्तर आये, तो इस न में नानापन तो कुछ नहीं जचा। "न" तो अभाव रूप पड़ा, लेकिन यहां भी नानापन जच रहा है कि अमुकका न किया, अमुकका निषेध किया। यहां भी न का किसी सत्से सम्बन्ध है। अभावका सत्से सम्बन्ध होता है। सर्वथा असत्में न सद्भावकी बात कह सकते और न अभावकी बात कह सकते।

अभावोंकी अन्यसद्भावरूपता अभाव चार प्रकारके होते हैं - प्रागभाव प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव। प्रागभावका अर्थ है—प्राक् मायने पहिले, अभाव मायने न होना। जैसे घड़ा है और उसकी फूटकर खपरियां बनेंगी। पर अभी घड़ा फूटा नहीं है, और घड़ा फूटता जरूर है, उसकी आखिरी चीज है खपरियां बनना। खपरियोंका उस समय तो अभाव है ना। तो खपरियोंका जो अभाव है वह घड़ेके सद्भावरूप पड़ा। तो खपरियोंका प्रागभाव है वह घड़ेके सद्भावरूप है। कोई घड़ाको बताकर कहे कि देखो यह खपरिया है तो कोई कहे कि कहाँ है खपरिया ? लो यहाँ खपरियोंका अभाव घड़ा रूप पड़ा। सर्वथा असत् नहीं रहा यहाँ है प्रागभाव। और, जब घड़ा फूटा तो खपरियां बन गई। कोई कहे कि देखो यह घड़ा है, इसमें जल भर लावो तो वह कहता है कि कहाँ है घड़ा ? तो यह घड़ेका अभाव खपरियांरूप पड़ा यही है प्रध्वंसाभाव। और, कोई समूचे घड़ेको उठाकर कहे कि देखो यह कपड़ा कितना अच्छा है तो कोई कहता है कि कहाँ है कपड़ा, यह तो घड़ा है। तो वहाँ कपड़ेका अभाव घड़ेका सद्भावरूप पड़ा यही है अन्योन्याभाव। और, कोई जीवको पुद्गल कहने लगे, पुद्गलको जीव कहने लगे, अजीवको जीव कहने लगे तो कहते हैं कि कहां है यह जीव ? तो यहाँ यह जीवका अभाव अजीवके सद्भावरूप पड़ा, यह है अत्यन्ताभाव। तो अभाव किसी न किसीके सद्भावरूप हुआ करता है।

विपर्यय ज्ञानमें विपरीत सत्की ख्याति—विपर्ययज्ञानमें जाना तो है रस्सीको सांप, मगर जो जाननेमें आया है सांप तो वहाँ नहीं है मगर वह सर्वथा असत्रूप नहीं है। अन्यथा उस भ्रान्त ज्ञान करने वालेके चित्तमें सर्पका आकार नहीं आ सकता और फिर घबड़ा नहीं सकता। ये जितनी विचित्रताएँ देखी जाती हैं उस ही एक भोडलके प्रति कोई कांच, कोई चांदी, कोई सीप मानता रहे तो ऐसे जो विचित्र नाना विपर्ययज्ञान हो रहे हैं यह विचित्रता तुम्हारे विपर्ययज्ञानके असत्ख्याति में अर्थगत तो हो नहीं सकती, असत्की ख्यातिमें असत् तो एक हीं रूप कुछ कल्पना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहेगी अर्थका तो असत्त्व है, विचित्रता किसकी। असत्ख्यातिवादियोंसे कहा जा रहा है कि सबके ज्ञानमें भिन्न-भिन्न तो ज्ञान उठ रहे हैं तो क्या यह विचित्रता उनके ज्ञान की है। उनके ज्ञानकी ही यह विचित्रता है तो भाई ज्ञानगत विचित्रता तो तब हो जब असत्का ज्ञान नाना रूप हुआ करता हो। तुम तो असत्ख्याति कह रहे नाः तो असत्का ज्ञान तो समस्त एक ही एक रूप है। नाना जितने हैं सब एक हैं। हाँ में विचित्रता हो सकती है पर 'न' में क्या वि चत्रता। तो असत्ख्यातिका स्वरूप तुम्हारा सिद्ध नहीं होता। प्रमाणप्रसिद्ध यह अर्थ ही जो कि कुछ विचार करनेपर निकट जाने पर सही समझमें आयगा कि यह तो मोडल ही है, वह ही मोडल अनेक पुरुषोंको नाना रूप प्रतिभात हो रहा है। असत् नानारूप प्रतिभात नहीं हुआ करता। पदार्थ ही नानारूप प्रतिभात हो सकता है।

प्रसिद्धार्थख्यातिके अभिप्रायसे असत्ख्यातिवादके निराकरणका प्रयास—इस असत्ख्यातिके निराकरणमें सांख्य और स्याद्वादवादियोंकी मित्रता चल रही है क्योंकि असत्ख्यातिमात्रके विरोधमें स्याद्वादको जो इष्ट है वैसा ही उन्हें भी इष्ट है। फिर भी जिसके अभिरुचिकी जो बात होती है उसकी गन्ध आ ही जाती है। तो यहां असत्ख्यातिका निर करण तो कर रहे हैं, पर प्रसिद्धार्थख्यातिमात्र विपर्ययज्ञान है ऐसा सिद्ध करनेके लिए कह रहे हैं, और इनका यह कहना है कि विपर्ययज्ञानमें भी सद्भूत पदार्थ जानकारीमें आया और वह सद्भूत क्या है? जो कुछ हमारे विचारमें आया वह सब सही है क्योंकि प्रतीतिके सिवाय अन्य कुछ और वस्तु विचार नहीं होता। प्रतीति अबाधित है। देखो जो ज नकारीमें आया वह तो सही है।

प्रसिद्धार्थख्यातिवादकी मान्यताका आधार—सांख्य ी असत्ख्यातिका निराकरण कर रहा है। सो केवल असत्ख्यातिके निराकरणके लिए थोड़ी स्याद्वादकी एकमति थी, लेकिन जब सत्कार्यवादी स्वरूपसीमासे आगे बढने लगे तो स्याद्वादका वह प्रतिद्वन्दी बन गया। प्रसिद्धार्थख्याति जो कुछ ज्ञानमें आता है वह सद्भूत अर्थ है। रस्सीको जिसने सांप जाना है तो उसने तो सत् जाना है, असत् नहीं जाना है। मेरे ज्ञानमें जो आया मेरे लिए वही सत् है। जैसे किसी पुरुषकी स्त्री गुजर जाय और उसे हो उस स्त्रीसे बड़ा स्नेह तो वह पुरुष यह कहता है कि मेरी तो दुनिया लुट गई। मेरी भी नही कहता, यों कहता है कि दुनिया लुट गई। अब सुनने वाले लोग सोचते हैं कि दुनिया कैसे लुट गई? अरे सोचने वाले सोचें मगर जो जान रहा है, जिसका गुजर गया इष्ट उसके ज्ञानकी ओरसे देखो तो पूरी दुनिया लुट गई है। ऐसे ही यह प्रसिद्धार्थख्याति वाले यह कह रहे हैं कि विपर्ययज्ञानमें भी सद्भूत अर्थ आ रहा है। जो है सो ही आ रहा है और वह सच है, इस तरह यह प्रसिद्धार्थख्यातिको विपर्ययज्ञान कहकर विपर्ययज्ञानका निषेध कर रहे हैं ताकि स्याद्वाद द्वाराकहे गए प्रमाण का रूप सिद्ध नहीं हो सके।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रसिद्धार्थख्यातिका अभिप्राय—सत्कार्यवादमें विपर्ययज्ञानके एवजमें प्रसिद्धार्थख्यातिको माना है यह प्रउिद्धार्थख्याति क्या है? जो प्रमाणसे प्रसिद्ध अर्थ है उसकी ख्याति हुई है, ज्ञानमें जो कुछ आया है उस पदार्थकी जानकारी होती है इसका नाम है प्रसिद्धार्थख्याति। यह केवल विपर्ययज्ञानमें ही लागू नहीं किन्तु समस्त ज्ञानों में प्रसिद्धार्थख्याति लागू है। इस सिद्धान्तका यह मंतव्य है कि ज्ञानमें जो कुछ भी झलकता है बस वही सत्य पदार्थ है, प्रमाणसिद्ध है चाहे रस्सीका सांप झलके चाहे रस्सीका रस्सी ही झलके, दोनों ज्ञान बराबरीके है। इसके अभिप्रायमें बाह्य पदार्थों कुछ मतलब ही नहीं है, जो कुछ है वह विचारसे है किसी भी तत्त्वका खण्डन इस मंतव्यमें है ही नहीं। हम किसका खण्डन करें? जिसका खण्डन करेंगे वह कुछ विचार ही तो बनेगा और उस विचारमें जो कुछ झलकका हो वही तुम्हारे विचारका विषय है। यहाँ सत्य और असत्यकी पूंछ नहीं है। जो प्रतीतिमें आया, जो समझमें आया सो सब निर्दोष सत्य है, क्योंकि इसका मंतव्य है कि प्रतीति हमेशा अबाधित होती है। भले ही हमने सीपमें चाँदी जान ली पर जब जान रहे हैं तब तो हमारे ज्ञानमें कोई बाधा नहीं है। जो चाँदीको चाँदी जान रहे हों, जिससे वे निशङ्क हैं ऐसे ही सीपमें हम चाँदी भी जान रहे हैं तो भी निशङ्क हैं, ठीक चाँदी जान रहे हैं। हमारे लिए तो यह भी पदार्थ है।

प्रसिद्धार्थख्यातिका अभिप्राय करके विपर्ययज्ञानका अभाव बताकर प्रमाणस्वरूप खण्डित करनेका प्रयास—प्रसिद्धार्थवादी कह रहे हैं कि एक प्रतीति में भी यदि हम कुछ बाधा डालने लगें तो सारा लोकव्यवहार खतम हो जायगा। हम हाथके तले देखते हैं और इस तलेको देखकर कहते हैं कि यह करतल है तो यह प्रतीति से ही तो कहते हैं, ऐसे ही प्रतीतिसे कोई साँप कह देता है, कोई चाँदी कह देता है। प्रतीति तो अबाधित है। करतलको जान रहे हैं वहाँ भी प्रतिभास है और रस्सीको साँप जान रहे हैं वहाँपर भी प्रतिभास है। प्रतिभासके नातेसे ही प्रमाणकी व्यवस्था है, पदार्थके नातेसे नहीं। ऐसा प्रसिद्धार्थख्याति वाले कह रहे हैं कि विपर्ययज्ञान नाम की कोई चीज ही नहीं है, फिर किसका निराकरण करनेके लिए तुम प्रमाणके स्वरूप में व्यवसायात्मक विशेषण लगाते हो।

प्रसिद्धार्थख्यातिवादके समर्थनमें एक शङ्काका उत्तर देनेका प्रयास—यदि कोई यह कहे कि सीपमें हमने चाँदीका जो ज्ञान किया तो चाँदीका ज्ञान करनेके कुछ देर बाद जब उसे उठाने जाते हैं तो वहाँ तो चाँदी नहीं मिलती। उत्तरकालमें तो इस ज्ञानके माफिक वे पदार्थ नहीं मिल रहे। इसके उत्तरमें प्रसिद्धार्थख्यातिवादी कहते हैं कि मत मिले, तो भी जिस समय चाँदीका प्रतिभास हो रहा है उस समयमें तो वह चाँदी है। देखिये! इनके मंतव्यमें कुछ थोड़ा सा यह आधार है कि जैसे कि लोग यह महसूस करते हैं कि हमारे ज्ञानमें यह लाभ आ रहा तो चाहे दूकानमें टोटा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी हो मगर सुख मिलेगा ज्ञानका। जैसे कलकत्तामें दूकान है वहाँ पड़ गया दो लाख का घाटा और खबर आ जाये कि चार लाखका नफा हुआ है तो उसे तो वह लाभकी बात सुनकर प्रसन्नता होगी। तो लाभ क्या है? एक दिलके विचारका लाभ है। जो चित्तमें विचार आया है, भाव आया है उसका लाभ है। ये समस्त बाहरी पदार्थ तो सब धोखा हैं, उनके समागमसे अपना कोई हित न समझे। यह ज्ञान जब ज्ञानमें आये वही सत्य है। तो किसी भी ज्ञानके बाद उस पदार्थके क्षेत्रके निकट जाकर चाहें वह पदार्थ न मिले लेकिन जिस कालमें ज्ञान हो रहा है उस कालमें तो वह पदार्थ है ही। इसमें कोई सन्देह नहीं।

प्रसिद्धार्थख्यातिके अभिप्रायके समर्थनमें अन्यथापत्तिका प्रस्ताव—प्रसिद्धार्थख्यातिवादी कह रहे हैं कि यदि प्रसिद्ध अर्थकी ख्यातिका सिद्धान्त नहीं मानते तो हम यह कह बैठेंगे कि बिजली कोई चीज नहीं है। मेघोंमें तो बिजली प्रकाशित होती है हम कहेंगे कि वह तो कोई चीज नहीं। क्योंकि जिस कालमें हमने जाना कि बिजली है उस कालमें तो बिजली है मगर उसके बाद तो बिजली है ही नहीं। ऐसे ही जिस जिस समयमें हमने रस्सीमें साँप समझा तो बिजलीकी तरह हमारे ज्ञानमें साँप भी आ गया। तो जैसे ज्ञानमें आनेसे बिजली है यह हम निर्णय बनाते हैं ऐसे ही ज्ञानमें आनेसे साँप है यह भी हम निर्णय बनावेंगे और यदि थोड़ी देर बाद वहाँ साँप नहीं मिलता तो तुम इसको झूठ बताते हो। कुछ देर बाद बिजली भी न मिले तो वह भी झूठ हो जायगी। यह शङ्काकारकी दलील है इस कारण प्रसिद्धार्थख्यातिको ही सत्य समझना, विपर्ययज्ञान और कोई चीज नहीं है। जो कुछ है तो सब प्रसिद्ध अर्थकी ख्यातिकी ही बात है, ऐसा असत्ख्यातिवादके निराकरण करनेके लिये सत्-कार्यवादीने अपना विचार रखा है।

प्रसिद्धार्थख्यातिमात्रके मन्तव्यका प्रतिविधान - इसपर आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि यह तुम्हारा कहना यों युक्त नहीं है कि यदि ज्ञानमें जो कुछ आया वह सब सच सच ही मान लिया जाय अर्थात् ज्ञानकी ऐसी ख्याति स्वीकार करली जाय कि इस ज्ञानमें जो जो भी आकार झलकता है वह सब यथावस्थित अर्थ ही झलकता है ऐसा माननेपर फिर यह ज्ञान भ्रान्त है, यह ज्ञान अभ्रान्त है यों दोनोंकी व्यवस्था हो ही नहीं सकती। जो आया सो सब सही हो गया, फिर हमारा तुम्हारा भी विवाद क्या? झगड़ा तो तब चलता है जब यह बात बीजमें आती है कि तुम्हारा कहना भ्रमपूर्ण है हमारा कहना भ्रमरहित है, तुम्हारा विपरीत है, हमारा सम्यक् है। यह व्यवहार तो हो ही नहीं सकता।

ज्ञानोत्तर कालमें अर्थके आशुविनाशकी कुयुक्तिका निराकरण—जो यह दलील दी गई थी कि जैसे ज्ञानमें बिजली आयी तो थोड़ी देर बाद बिजली नहीं मिलती है ऐसे ही थोड़ी देरको हमारे ज्ञानमें जल आ गया, तो रेतीली जमीन, पर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उसे निरखकर ज्ञानमें लल आ गया तो जैसे ज्ञानमें बिजली आकार भी थोड़ी देर बाद बिजली नहीं मिलती इसी तरह ज्ञानमें जल आकार भी उसके बाद जल नहीं मिलतो तो न मिलने दो, जल नहीं मिलता न सही मगर जलकी निशानी जमीनका गीला होना आदि तो मिलेगा। बिजलीकी तरह तो जलका शीघ्र विनाश कहीं नहीं देखा जाता है। जैसे यह छत बनी है, परसों पानी गिर गया था मगर आज भी उस की गिलाईसे मालूम होता है कि पानी यहाँ था बिजलीमें यद्यपि प्रकाश प्रकट है पर थोड़ी ही देरमें तुरन्त मिट गया तो बिजलीकी ही तरह ये जल वगैरह तुरन्त थोड़े ही मिटने वाले हैं। ये मिट भी जाय, कुछ समयको सूख भी जायें तो भी जमीनका चिकना गीला रहना यह कुछ शेष रहता है कुछ समयतक, पर जहाँ मारीचिकामें रेतीली जमीनमें जलका ज्ञान किया गया वहां जल ज्ञानके बाद जब हम निकट जाते हैं तो कुछ तो उसके चिन्ह मिलने चाहिए थे, एक तो यह दलील तुम्हारी युक्त नहीं है।

भ्रान्त ज्ञानमें सबका ज्ञेय वही न होनेसे विद्युतके दृष्टान्तकी अयुक्तता—दूसरी युक्ति सुनिये। जैसे विद्युत्का दृष्टान्त दिया कि ज्ञानमें विद्युत आया और थोड़ी देरमें मिट गया, मिट जावो मगर जिस समय हमारे ज्ञानमें विद्युत् आयी उसी सब नगरोंमें ५०० मील तककी दूरीके सारे नगरोंमें सारे मनुष्योंको एक साथ बिजलीका ज्ञान हुआ इसी तरह सीपमें यदि हम चांदीका ज्ञान कर रहे हैं तो वहांके आसपासके सारे लोग भी चांदी जानते हैं क्या ? ऐसा तो नहीं है। सब लोगोंके विचित्र २ ज्ञान हो रहे हैं, कोई सीपको सीप भी समझ रहा, कोई सीपको चांदी भी समझ रहा, कोई कांच भी समझ रहा इस कारण यह कहना अयुक्त है प्रसिद्धार्थख्याति ही सब चीज है, विपर्यज्ञान कोई चीज नहीं है।

विपर्ययज्ञानके स्वरूपके निर्णयका औचित्य—जैसे सम्यग्ज्ञानकी सिद्धि की जाती है तो वह भी एक निर्णय है इसी तरह विपर्यय ज्ञानके स्वरूपकी सिद्धि करना भी निर्णय है। विपर्ययज्ञानका यह स्वरूप है इसकी सिद्धि तो करना चाहिए। जैसे पाप खोटे होते हैं, पाप न करना चाहिए। ठीक है मगर पापके स्वरूपकी सिद्धि करे तो क्या यह भी पाप है ? कोई हिंसाका लक्षण बनाये और उसको पाप सिद्ध करे तो पापको पाप सिद्ध करना क्या पाप है ? पापका करना पाप है। यह पाप है ऐसा निर्णय करे तो पाप नहीं है। यदि पापके स्वरूपका निर्णय नहीं होता तो हम छुटकारा कहांसे करें। इसी प्रकार अनेक बल लगाकर हम सम्यग्ज्ञानकी सिद्धि करते हैं, इसी प्रकार विपर्यय ज्ञानको भी सिद्धि की जा रही है। विपर्ययज्ञानमें विषय विपरीत है और वह खोटा है पदार्थके अनुकूल नहीं है लेकिन एक विपर्ययज्ञान क्या होता है इसका निर्णय तो करना ही चाहिए। ताकि हम सम्यग्ज्ञानका यह निर्णय कर सकें कि जिसमें विपर्ययज्ञान नहीं होता वह ज्ञान सम्यक् है।

सत्कार्यवादमें प्रसिद्धार्थख्यातिका सन्मान—सत्कार्यवादी विपर्यय ज्ञान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

को नहीं मानते हैं, किन्तु उनका मंतव्य है कि प्रत्येक ज्ञानमें प्रसिद्ध अर्थकी जानकारी होती है, विपरीतमें भी और सच्चे ज्ञानमें भी। जैसे पड़ी है रस्सी और भ्रम हो गया कि यह साँप है, तो उसको भ्रम प्रसिद्धार्थका ही तो हुआ है। कोई किसी देशमें कोई अनजान चीज हो उसका तो भ्रम नहीं होता। देखिये उस रस्सीको निरखकर ऐसा तो भ्रम नहीं होता कि यह मटका है। अरे जो उसके ख्यालमें बहुत बहुत बात रहती है चाहे प्रतिषेधके रूपमें और चाहे माननेके रूपमें बस उस अर्थकी ख्याति हो गयी। रस्सी देखा तो उसका प्रसिद्धार्थ जानकारीमें आ गया। किसी मनुष्यकी सकल थोड़ी थोड़ी किसी अपने मित्रकी सकलसे मिलती हो तो उस मनुष्यको दूरसे देखकर झट हमें उस मित्रकी स्मृति आ जाती है अथवा यह ज्ञान होने लगता कि यह मेरा ही मित्र आ रहा है। तो जिसमें हमारी लगन है चाहे रागसे लगन हो या जिससे हम डरते रहते हैं उसकी जानकारी झट आ जाती है। किसीकी सकल हमारे दुश्मनसे कुछ मिलती हो तो उसको देखकर हमें झट दुश्मनका बोध हो जाता है, अरे वही आ रहा है। तो जो हमारे चित्तमें प्रसिद्ध बात हो उस अर्थकी ख्याति हो गई है। विपर्यय ज्ञान कुछ नहीं है, ऐसा ये प्रसिद्धार्थख्याति वाले कह रहे हैं।

न्यायक्षेत्रमें हठवादकी विफलता - प्रकरण तो यह है कि विपर्ययज्ञान भी चीज है और विपर्ययज्ञानका, उल्टे ज्ञानका जिसमें निराकरण बसा हो वह ज्ञान सही है पर जिसे किसीकी बातका खण्डन करनेका ही विकल्प बन गया हो तो कोई न कोई बात जबरदस्ती भी निकल दे किन्तु विद्वानोंकी गोष्ठीमें गलत कहने वालेकी बात चल नहीं सकती। लेकिन कोई हठी हो जो स्वयं अपनी बुद्धि न रखता हो, अपनी अकल कहींसे उधार लाया करता हो तो ऐसा पुरुष तो कभी मान ही नहीं सकता, पर यह तो एक न्यायका क्षेत्र है उसमें यह चर्चा चल रही है। जैसे एक कथानक प्रसिद्ध है कि कोई गांवमें एक मुखिया था पटेल, पंचायत हो रही थी किसी मामलेपर। होते–होते कोई हिसाबकी बात आ गई। थी मामूली सी बात। पटेलने कहा लो ३० यह और ३० यों ५० हो गये। लोग कहने लगे कि ३० और ३० साठ होते हैं। तो पटेल कहता है कि अगर ३० और ३० मिलकर ५० न होते हैं तो ये १०–१० सेर दूध देने वाली हमारी ७ भैंसें हैं ये पंचोंको दे देंगे। अब यह बात उस की स्त्रीने भी सुन ली तो बड़ी उदास हो गई। पटेल जब घर पहुँचा तो उस स्त्रीको उदास देखकर पूछता है कि तू उदास क्यों है? तो स्त्री बोली कि ये ७ भैंसें अब चली जायेंगी, कलको बच्चे क्या खायेंगे? हम क्या खायेंगे? तुम्हें क्या खिलायेंगे? पटेल बोला –ऐसा क्यों तुम्हें खयाल हुआ? स्त्रीने कहा कि आप कह आये हैं पंचोंसे कि अगर ३० और ३० मिलकर ५० न हों तो हम अपनी सातों भैंस दे देंगे। तो पटेल स्त्रीसे कहता है कि तू तो निरी पगली है. देखेंगे हमारी भैंसें कौन लेता है? और जब हम अपने मुखसे कह देंगे कि ३० और ३० मिलकर ६० होते हैं तभी तो वे हमसे भैंसें लेंगे! तो अन्याय और अविवेकियोंकी गोष्ठीकी तो बात ही नहीं। यहाँ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

न्यायक्षेत्रकी बात चल रही है।

प्रसिद्धार्थख्यातिमात्रका अभिप्रायकरके विपर्ययज्ञानके स्वरूपके निरास का प्रयास प्रकरण यह है कि स्याद्वादी यह कह रहे हैं कि विपरीत ज्ञान भी कुछ होता है। जैसे सीप पड़ी हो, चाँदी जान गए तो यह विपरीत ज्ञान है। पदार्थ कुछ है और हम जान कुछ रहे है ऐसा ज्ञान हुआ करता है और ऐसा ज्ञान प्रमाणभूत नहीं है जिसमें उल्टा ज्ञान न हो संशय ज्ञान न हो, अनध्यवसाय न हो वह ज्ञान प्रमाण है। इसपर ये प्रसिद्धार्थख्यातिवादी यह कह रहे हैं कि विपर्यय ज्ञान तो दुनियामें कुछ होता ही नहीं। तब वह जो कुछ ज्ञानमें आता है वह प्रसिद्ध अर्थ आता है। मेरी दुनियामें मेरे ज्ञानमें, जो मेरी वासनाकी बात भरी हो प्रसिद्ध अर्थ हो बस वह ज्ञान में आ गया विपर्यय ज्ञान क्या हुआ ?

प्रसिद्धार्थख्यातिवादका निराकरण—इसके निराकरणमें कुछ युक्तियां देदी, अब एक युक्ति यह दे रहे हैं कि यदि प्रसिद्ध अर्थकी ख्याति ही मात्र मानी जाय और विपर्ययज्ञान सम्यग्ज्ञान इनकी कोई व्यवस्था न की जाय तो वाध्य बाधक भाव भी नहीं बन सकता। अर्थात् जैसे सीपको हमने चाँदी समझा तो थोड़ी देर बाद जब हम निकट पहुंचते हैं तो यह ज्ञान होता है कि ओह ! यह तो सीप ही है। तो उस समय सीप है यह ज्ञान तो बन गया बाधक पूर्वज्ञानका निषेध करने वाला और जो पहिले ज्ञान किया था कि यह चाँदी है उसका हो गया निषेध । तो बाध्य–बाधक भाव भी न बनेगा, क्योंकि तुम्हारे अभिप्रायसे तो समस्त ज्ञान सत्य विषय करते हैं, तो सभी सभी सत्य हैं, बाहर खड़े होकर जाना कि चाँदी है वह भी तुम्हारे यहाँ सत्य है और पास आकर जान लिया कि यह सीप है तो वह भी तुम्हारे यहां सत्य है फिर सत्य–असत्य तुम्हारे यहां सब एक हो गया फिर न निर्णयकी बात रही और न व्यवहारकी बात रही। इससे यह सिद्ध है कि विपर्यय ज्ञान कोई बोध है और उसके प्रमाणत्वके निराकरणके लिए इस तृतीय सूत्र में यह कहा गया है कि प्रमाणभूतज्ञान निश्चयात्मक होता है, अनुमानज्ञानकी तरह संशयज्ञान आदि समारोपोंका विरोध होनेसे प्रत्यक्षज्ञानमें भी संशयज्ञान, विपर्ययज्ञान आदि नहीं होते।

विपर्ययज्ञानस्वरूपके निरासमें आत्मख्यातिमात्रका अभिप्राय—अब ज्ञानाद्वैतवादी आकर अपना मंतव्य रखता है कि अजी, क्यों विकल्पोंमें पड़ते हो, हमारी बात सुनो ! जो कुछ यह आकार प्रतिभास हो रहा है वह सब ज्ञानका ही आकार है पर अनादिकालसे अज्ञान लगा है सो यह ज्ञानका आकार बाह्य पदार्थोंकी तरह मालूम पड़ता है। दुनियामें जो कुछ है वह सब ज्ञानका आकार है। ये भींट, चौकी, पत्थर, ईंट कुछ चीज नहीं हैं। और, जैसे स्वप्नमें बड़े–बड़े महल निरखते हैं, पेड़ निरखते हैं, बड़े–बड़े जानवर निरखते हैं तो यह बतावो कि वहाँ कोई जानवर है क्या ? वहाँ कोई महल है क्या ? वह तो एक ज्ञानका आकार है, जो वह जान रहा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है उसकी जानकारीका रूप है, चीज तो कुछ नहीं है। इसी तरह यहाँ भी ये सब कुछ नहीं है। भले ही हाथसे आप लाठी पकड़ें और आपको यह लगे कि यह लाठी है तो स्वप्नमें भी ऐसा ही लगता है। स्वप्नमें भी तो आप लाठी पकड़ते हो तो वहाँ भी ऐसा लगता कि यह लाठी पकड़े है। है कुछ नहीं, ज्ञानका आकार है। इसी तरह यहाँ भी यह सब ज्ञानका आकार है, चीज कुछ नहीं है। ऐसा मंतव्य ज्ञानाद्वैतवादी रख रहे हैं।

अज्ञान और वासनाके बाह्य अर्थोकी विचित्रताब ताकर आत्मख्याति-मात्रके समर्थनका प्रयास आत्मख्यातिवादी कह रहे हैं कि विपर्ययज्ञान नामकी कोई चीज नहीं है। जो कुछ है यह सब ज्ञानका ही आकार है लेकिन लग आज सही रहा है कि यह मंदिर है, यह पुस्तक है, यह घड़ी है। यह सब अज्ञानकी वजहसे सही लग रहा है, है कुछ नहीं। अनादिकालसे जीवोंके विचित्र वासनाएँ लग रही हैं और वे वासनाएँ क्रमसे लगा करती हैं। तो वासनाओंके जगनेका कारण पुरुषोंमें जिस २ प्रकारकी वासना जगती है उस उस आकारसे ज्ञान बनते जाते हैं और वे सब ज्ञान अपने ही आकार मात्रसे सम्वेद्य हैं। ऐसा नहीं है कि कोई पदार्थ ऐसा हो और ज्ञान में फिर ऐसा आता हो, पदार्थकी ओरसे कोई मतलब नहीं, ज्ञानका कोई सम्बन्ध नहीं, जीवोंकी अपनी अपनी जुदी जुदी वासनाएँ हैं और उस उस प्रकारके ज्ञान होते हैं। जैसे स्वप्न देखने वाले लोग क्या एक ही भांतिका स्वप्न देखते हैं। पचासोंने देखा तो उन सबके पचासों तरहके स्वप्न हैं, क्योंकि जिसके जैसी वासना लगी थी उसने तो वासनाके अनुसार वैसे ही बाह्यमें पदार्थ देखा। ऐसे ही यहाँपर भी जिसके जैसी वासना लगी है वैसा ही बाह्य पदार्थोंको मानकर रहता है। यह मेरा मकान है, ये मेरी दूकान है, ये मेरे रिस्तेदार है ऐसी ऐसी वासनाएँ लगी हैं सो बाह्य अर्थका भ्रम है, है कुछ नहीं इस कारण आत्मख्याति ही सब कुछ है, विपर्ययज्ञान कुछ नहीं है।

आत्मख्यातिवादियोंका अभिप्राय भैया ! यहां आत्मख्यातिके अभिप्राय में आत्मासे मतलब आत्माका नहीं किन्तु ज्ञानका आत्मा जानना अर्थात् ज्ञानका निजी रूप। प्रत्येक ज्ञानमें ज्ञानका निजी रूप ही प्रतिभासमें आता है, और देखिये निश्चय-नयकी अपेक्षा तो कुछ कुछ उसकी बातसे मिलान हो रहा है ना। निश्चयनयसे हमारे प्रतिभासमें पदार्थ आता है या ज्ञेयाकार आता है। ज्ञेयाकार हमारे प्रतिभासमें आता है निश्चयसे, पदार्थकी कोई चीज नहीं आती। यह ज्ञान ही उस उस पदार्थाकार रूप परिणाम करके प्रतिभासमें आ रहा है। लो कुछ कुछ इसी ढंगसे ही तो चले ये ज्ञाना-द्वैतवादी पहिले, पर उसे एकान्त मान लिया। इससे आगे और कोई कुछ बाह्य ही नहीं है ऐसा हठ करके सीमा तोड़ कर कह रहे हैं ज्ञानका जो स्व आकार है, ज्ञानका ही जो निजी रूप है उस आत्माकी ही ख्याति है, जानकारी है, विपर्ययज्ञान इससे अलग और कुछ नहीं है। इस प्रकार आत्मख्यातिवादियोंने अपनी आत्मख्यातिका मंतव्य रखकर विपर्ययज्ञानका निषेध किया। विपर्ययज्ञानका स्वरूप न देने तो उसके निराक-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रणमें स्याद्वादियोंने जो प्रमाणका स्वरूप कहा है वह खण्डित हो जाय इस भावनासे वे आत्मख्यातिमात्रको विपर्यय ज्ञान कह रहे हैं।

आत्मख्यातिमात्रका आशय—प्रमाण वह ज्ञान होता है जिसमें संशय विपर्यय और अनध्यवसाय नहीं होता। इस सिलसिलेमें कुछ दार्शनिक विपर्ययज्ञानका लोप कर रहे हैं कि विपर्ययज्ञान कुछ चीज ही नहीं है, फिर तुम किसका निराकरण करनेके लिये प्रमाणके स्वरूपमें निश्चयात्मक विशेषण दे रहे हो? इस सम्बन्धमें ज्ञानाद्वैतवादी यह कह रहे हैं कि विपर्ययज्ञान कुछ चीज नहीं है किन्तु जो कुछ ज्ञानमें प्रतिभास होता है वह ज्ञानका ही आकार है। जानकारीसे पदार्थका कोई सम्बन्ध नहीं है, और जितने भी पदार्थ भी लोकमें मालूम पड़ते हैं, यह भींट है, दरी है, आग है आदिक तो ये सब ज्ञानके ही आकार हैं चीज कुछ नहीं हैं। इस तरह आत्मख्याति ही अर्थात् ज्ञानके स्वरूपकी प्रसिद्धि ही ज्ञानका रूप है और पदार्थ कुछ है ही नहीं, फिर विपर्ययज्ञानका क्या अर्थ रहा ऐसा ज्ञानाद्वैतवादी कह रहे हैं, उसका अब आचार्य प्रतिविधान करते हैं।

ज्ञानकी संविन्मात्र निष्ठता व अर्थाकारताकी असिद्धि—देखिये ज्ञान आत्मख्याति तब सिद्ध होगी जब ज्ञान केवल ज्ञानके स्वरूपमें ही निष्ठ रहे वे पदार्थ असत् हैं एक तो यह पक्ष सिद्ध हो और दूसरी बात यह सिद्ध हो कि समस्त पदार्थ ज्ञानके ही परिणमन हैं प्रतिभास हैं। जब ज्ञानकी ये दो बातें सिद्ध हो जायें कि प्रथम तो ज्ञान अपने स्वरूप मात्रके सम्वेदनमें ही रहता है और दूसरी बात यह सिद्ध हो कि जितने भी पदार्थ हैं ये सब ज्ञानस आकार हैं। पदार्थ कुछ चीज नहीं है। इन दो बातोंकी सिद्धि होनेपर आत्मख्याति सिद्ध हो सकती है। आत्मख्याति कहो चाहे ज्ञान-स्वरूपाख्याति कहो यहाँ आत्मासे मतलब जीवका नहीं है किन्तु जिस ज्ञानने जो कुछ जाना है उस ज्ञानने केवल ज्ञानको ही जाना है और उसमें केवल ज्ञान ही ज्ञेय होता है, पदार्थ तो है ही नहीं, वह ज्ञेय क्या होगा। और, जो कुछ भी ये पदार्थ मालूम होते हैं कि यह अमुक चीज है यह अमुक चीज है। तो यह बात सिद्ध हो जब ये दो बातें सिद्ध हो जायें कि ज्ञान केवल ज्ञानके स्वरूप मात्रके सम्वेदनमें ही रहा करता है और ये सब पदार्थ ज्ञानके ही आकार बन गए हैं। ये दो बातें सिद्ध हों तो आत्मख्याति बने, किन्तु ये दोनों ही नहीं हैं।

आत्मख्यातिमात्रके मन्तव्यमें सत्यासत्यकी अविशेषताका प्रसङ्ग—यह जो माना गया कि जितने भी ज्ञान होते हैं वे सब ज्ञानके आकारको ही ग्रहण करते हैं पदार्थको नहीं जानते। पदार्थकी जानकारी नहीं किया करते, केवल अपने स्वरूपका आकार ही ग्रहण करते हैं। ऐसा यदि माना गया तो भ्रान्तज्ञान और अभ्रान्तज्ञानका ज्ञानभेद न रहेगा, क्योंकि पदार्थ तो कुछ माना नहीं और पदार्थकी कुछ जानकारी भी नहीं, जो कुछ जानन होता है वह ज्ञानके आकारसे ही सम्वेदन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होता है। तो चाहे भ्रान्तज्ञान हो वह भी ज्ञानाकारका सम्वेदन करता है चाहे अभ्रान्तज्ञान हो, सही ज्ञान हो वह भी अपने आकारका ही जानन करता है, सर्वत्र अपने ज्ञानस्वरूपका ही आकार जाना तो सारे ज्ञान एक समान हो गए फिर उसमें यह निर्णय करना कि यह ज्ञान झूठा है, यह ज्ञान सच्चा है यह बन ही नहीं सकता। और दूसरी बात यह है कि खण्डन—मण्डन वाध्य वाधक वाद—विवाद ये सब लुप्त हो जायेंगे क्योंकि तुमने तो ज्ञानके आकारका ही ग्रहण माना है। पड़ी है रस्सी मान लिया सीप एक ऐसा पुरुष और पड़ी है रस्सी और रस्सी ही मानी जा रही है एक ऐसा पुरुष, इन दोमें फर्क क्या रहा ? उस रस्सीके ज्ञान वालेने भी ज्ञानका ही आकार जाना और साँपका ज्ञान करने वालेने भी ज्ञानका ही आकार जाना। तो मात्र ज्ञानाकार ग्राही होनेसे दोनोंका ज्ञान बराबर हो गया फिर फर्क क्यों डालते हो कि इनका ज्ञान झूठा है, इनका ज्ञान सच्चा है !

आत्मख्यातिके मन्तव्यमें वाध्यवाधक ज्ञानके अभावका प्रसङ्ग—और भी देखिये ! वही पुरुष जो कि रस्सीको सांप जान रहा था वही बादमें निकट जाकर परीक्षा करता है तो वह जानता है ओह, यह तो रस्सी है, मेरा जो पहिले ज्ञान था वह झूठा था। तो देखो अबके ज्ञानने पहिलेके ज्ञानको मना किया ना। तो ऐसा वाध्य वाधक भाव भी नहीं बन सकता है क्योंकि ज्ञानका आकार ही ग्रहण करनेपर कहीं भी व्यभिचार नहीं बन सकता, इस कारण यह मानना चाहिए कि पदार्थ सब हैं और उन पदार्थोंका ज्ञान भी लोग करते हैं जो जैसा पदार्थ है वैसा ही ज्ञान कर पाया तो वह है सम्यग्ज्ञान और जैसा पदार्थ है वैसा ज्ञान नहीं कर पाया, उसके ही समान किसी दूसरे पदार्थका आरोप कर दिया तो वही हुआ विपर्ययज्ञान। विपरीत ज्ञान है और उसके निराकरणके लिये प्रमाणके स्वरूपमें व्यवसायात्मक शब्द दिया है।

आत्मख्यातिके मन्तव्यका वहिष्ठतया प्रतीति द्वारा खण्डन—ज्ञानमात्र स्वके ज्ञानके ही आकारको ग्रहण करता है इतना मात्र माननेपर और इन पदार्थोंका निषेध करनेपर यह और महान दोष आता है कि बाहर तो कुछ माना नहीं, कोई पदार्थ है ही नहीं, केवल जो कुछ है वह ज्ञानका ज्ञानमें ही सब कुछ है, ऐसा माननेपर ज्ञानसे जो जाना गया उस जाननेकी प्रतीति अन्तर्निष्ठ होकर ही होना चाहिए। जिस जीवको सुख प्राप्त होता है तो कोई भी मनुष्य अपने सुखका अनुभव बहिष्ठरूपसे करता है क्या ? जैसे कि ज्ञानमें ऐसा जचता है कि कोई १० हाथ दूरपर वह चीज है या यह चीज है यों जैसे बाहरमें जानकारियाँ चलती हैं इसी प्रकार क्या बाहरमें सुखके अनुभव भी चला करते हैं ? जो भी पुरुष सुखका अनुभव करता है वह अपने आत्मा में ही सुखका अनुभव करता है। जैसे जानकारियाँ होती हैं ना, यह है चौकी तो कोई सुखका भी अनुभव करे कि यह है मेरा सुख, ऐसा तो नहीं होता, सुखका सम्वेदन अन्तः ही हुआ करता है। तो ऐसे ही जब ज्ञानके आचारको ही ग्रहण करता है तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उसकी भी प्रतीति बाहरी पदार्थ है इस रूपसे न होना चाहिए क्योंकि विपर्यय ज्ञान करे कोई तो, या सम्यग्ज्ञान करे कोई तो, उसने तो अपने ही ज्ञानके स्वरूपमें एक सम्वेदन किया है तो उसे बाहर क्यों कुछ दिखना ? बाहरमें पदार्थ स्थित है, बाहरमें ज्ञेय है इस रूपसे प्रतीति क्यों होती, वह न होनी चाहिये।

आत्मख्यातिके मन्तव्यसे बाह्यार्थमें प्रवृत्तिके अभावका प्रसंग मात्र आत्मख्यातिके आशयमें तीसरा दोष यह है कि जानने वाले तो अपने आपको ही जान रहे हैं, बाहरसे तो कोई सम्बन्ध नहीं रखा ना, बाहर तो कुछ इसका है ही नहीं ना। तो फिर बाहरकी चीजका ग्रहण करनेके लिये यह प्रवृत्ति क्यों करता है ? जब सब कुछ ज्ञानने ज्ञानमें ही ज्ञानके आकारको ही जाना, बाहर कुछ है ही नही, पदार्थ ही नहीं है तो फिर जानने वाले पुरुष बाहरमें किसी पदार्थको ग्रहण करनेकी कोशिश क्यों करते हैं ? क्योंकि जो बात बाहर नहीं है और अस्थिर भी है उसमें प्रवृत्तिका विधान ही नहीं हो सकता ! यह ज्ञानाद्वैतवादी इस आत्मख्यातिको अवहिष्ठ मानता है याने बाहरमें कुछ नहीं है और फिर यह हैं क्षणिकवादी सो उस ज्ञानको भी क्षणिक मानते हैं। तो तत्त्व तुम्हारे यहाँ स्वरूपमात्र रहा और विनीशीक रहा। बाहर तो कोई चीज माना नहीं, फिर अर्थोंमें प्रवृत्ति क्यों हो ? रोटी बनाना, खाना, उद्यम करना ये सारी प्रवृत्तियां क्यों होंगी ? ये होती हैं, इससे सिद्ध है कि ये सब पदार्थ हैं, उन पदार्थोंसे हम हित अहित मानते हैं इसलिए जो हितकारी बात है उसमें लगाते हैं और जो अहितकारी बात है उससे हटते हैं। यदि मात्र ज्ञान ज्ञानके ही आकारमात्रमें सम्बेदन करे, पदार्थ कुछ नहीं हो तो यह सब व्यवहार समाप्त हो जायगा। इससे आत्मख्यातिमात्र मत मानो। पदार्थ हैं और उन पदार्थोंके सम्बन्धमें जैसा पदार्थ है वैसा न न जान सके तो वह विपर्ययज्ञान है।

अविद्यावश बहिष्ठताकी प्रतीति माननेपर विपर्ययज्ञानकी सुतरां सिद्धि— भैया ! सीधी सी बात है लेकिन जब कोई अपनी चतुराईकी अधिकता बगराती हो और केवल एक विरोध ही विरोध मनमें समाया हो तो ऐसे ही अनिर्वचनीय गजबमें युक्ति पाई जाती है कि जिससे साधक–साध्यका स्वरूप न बन सके। ये ज्ञानाद्वैतवादी कह रहे हैं अपने दोषके निवारणके लिए कि ये बाहरके पदार्थ सब मालूम होते हैं और यह ज्ञान बाहरमें कुछ यह है इस प्रकारसे जानता भी है लेकिन वे सब अज्ञानके आक्रमणसे ऐसा जानते हैं। अविद्याका घोर अन्धकार लगा है इस जीवमें इस कारण बाहरमें जानता है कि यह चीज है। और बाहरमें स्थितिरूपसे ज्ञान करता है कि यह चीज है और साथ ही इन पदार्थोंको स्थिर भी वह देखता है यह सब अज्ञान का माहात्म्य है। अज्ञानके उपद्रवके कारण यद्यपि तत्त्व केवल ज्ञानमात्र है और ज्ञान स्वरूपका ही आकार सम्वेदनमें आता है लेकिन अविद्याका ऐसा जोर है कि है तो यह तत्त्व अवहिष्ठ अर्थात् अन्तः रहनेवाला लेकिन बहिष्ठ मानना पड़ता है। है तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अस्थिर किन्तु स्थिर पदार्थ मानना पड़ता है यदि ऐसा कहते हो तो तुमने बहुत भला कहा। यह तो विपरीत ज्ञान है, चीज है तुम्हारी अवहिष्ठ और अस्थिर किन्तु मान रहे हैं बहिष्ठ याने बाहरमें रखी हुई व स्थिर इसीका नाम विपर्ययज्ञान है, क्योंकि तुम्हारे ज्ञानाकारसे भिन्न और स्थिर कुछ मालूम पड़ने लगा ना, है तो तत्त्व ज्ञानसे अभिन्न और है अस्थिर मगर मालूम पड़ने लगा और तरहका। तो इस हीको विपर्ययज्ञान कहा करते हैं। विपर्ययज्ञानका अपह्नव किया नहीं जा सकता, विपर्ययज्ञान दूर तो किया जा सकता है पर विपर्ययज्ञानके स्वरूपका निराकरण किया ही नहीं जा सकता। इस प्रकार इस विपर्ययज्ञानके स्वरूपकी सिद्धि के प्रकरणमें आत्मख्याति मात्रका अभिप्राय ले कर जोविपर्ययज्ञानका निराकरण कर रहे थे उनका निराकरण किया।

अनिर्वचनीयार्थख्यातिमात्रका आशय करके विपर्ययज्ञानके स्वरूपके निरासका प्रयास—एक दार्शनिक कह रहा है कि विपर्यय ज्ञान जिसे तुम कहा करते हो वह विपर्ययज्ञान और कुछ नहीं है किन्तु एक ऐसे अर्थकी जानकारी है जो अनिर्वचनीय है जिसे न हम सत् कह सकते और न असत् कह सकते ऐसे अनिर्वचनीय अर्थकी ख्याति होना, व्यक्ति होना, यह ही मात्र है कोरा, विपर्ययज्ञान कुछ नहीं है। इसे कहते हैं अनिर्वचनीयार्थख्याति। इसका मंतव्य है कि विपर्ययज्ञानका विषय ही सिद्ध नहीं होता। विपर्ययज्ञान मायने विपरीतज्ञान। पड़ी है सीप और जान लिया चाँदी इसीका नाम विपर्ययज्ञान है। यह दर्शन कह रहा है कि इस ज्ञानका कोई विषय ही नहीं है। क्या इस ज्ञानका विषय उपदेशगम्य है? उपदेशगम्य भी नहीं है, क्योंकि तुम क्या उपदेश दोगे क्या बात बतावोगे? देखो जो जिस ज्ञानमें प्रतिभास होता है वह उसका विषय कहलाता है ना। जैसे है तो मारीचिका रेतीली जमीनपर हो गया जलका ज्ञान तो जलका जो वहाँ ज्ञान होता है उसमें जल ही तो ज्ञानमें आ रहा है, सद्भूत या असद्भूत! सत्भूत आ रहा तो कहते कि सत् है और ज्ञानमें आरहा है तो वह तो सच्चा ज्ञान हो गया। फिर उसे विपर्ययज्ञान क्यों कहते हो? यदि जल नहीं है और फिर जल ज्ञानमें आ रहा है यों असत् यदि ज्ञानमें आने लगे तो आकाशके फूल, गधेके सींग बंध्याका लड़का ये सब विषय बन बैठेंगे। असत्का प्रतिभास और असत्की प्रवृत्ति हुआ ही नहीं करती। जो रेतीली जमीनमें भी जलका ज्ञान करता है वह जल ज्ञान करके उस ओर दौड़ता क्यों है? यदि सर्वथा असत् विषय आये तो प्रवृत्ति क्यों बनती है? इससे उस विपर्यय ज्ञानमें न तो सत् पदार्थ विषयमें आया न असत्पदार्थ विषयमें आया और ऐसा भी नहीं है कि जो विषयमें आया वह सत् असत् दोनों रूप हो। दोनोंका तो परस्परमें विरोध है इस कारण इस ज्ञानका कोई विषय ही नहीं बन पाता फिर विपर्ययज्ञानकी क्या कल्पना करते हो? विपरीत अर्थ ही कुछ नहीं हो सका।

शंकाकारद्वारा असत्के प्रतिभासमें व्यवस्थालोपकी आपत्तिका पारण—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यदि यह कहोगे कि मारीचिकामें जो जलका ज्ञान होता है उसमें जल प्रतिभास में नहीं आ रहा है और कुछ प्रतिभासमें आ रहा है तो यह बात तो एकदम अयुक्त है। यदि रेतीली जमीनमें जलका ज्ञान किया जा रहा है और प्रतिभासमें जल नहीं आ रहा है तो जलका ज्ञान हुआ यह व्यपदेशभी कैसे हो सकता है। विपर्ययज्ञानमें कुछ तत्त्व नहीं आता है। अटपट कुछ बात सी बन गई है। क्या विषय है वह अनिर्वचनीय चीज है। न सत् है, न असत् है, न उभयरूप है न अनुभयरूप है किन्तु एक अनिर्वचनीय है।

अविदितरहस्यतामें अनिर्वचनीयताकी कल्पना—देखो भैया ! जैसे कुछ बुद्धि नहीं चलती है किसी बातके सिद्ध करनेमें तो यों कह बैठते हैं कि यह तो सब ईश्वरकी लीला है। सृष्टि कैसी बनी, कहाँसे क्या प्रारम्भ हुआ, किसने बनाया, अनेक प्रश्न होनेपर कुछ तो उत्तर देनेकी कोशिश होती है किन्तु जब युक्तिपर नहीं बात उतरती है तो यही कहना पड़ता है कि यह तो सब ईश्वरकी विचित्र लीला है। उस को तो वही जाने, दूसरा क्या समझे। बहुत समय पहिले जब रेलगाड़ीका विकास प्रारम्भ हुआ था उस समय देहातोंमें जब रेलगाड़ी चले तो उसके आनेके पहिले ही उसे देखनेके लिये लोगोंकी भीड़ इकट्ठी हो जाती थी। वे तो समझते थे कि गाड़ियां बैलोंसे घोड़ोंसे चला करती हैं, यह यों ही कैसे चलती है। उस समय यंत्र, मशीन, इञ्जन आदिका उनके कुछ विकल्प ही न होता था। वे तो समझते थे कि इस गाड़ी को चलाने वाली एक काली देवी होती है और देवीमें तो बहुत बड़ी शक्ति होती है। जो चाहे करले। तो इसी प्रकार जब निमित्त उपादानकी बात निर्णयमें न आयी कि प्रत्येक पदार्थ अपने उपादानसे परिणमा करते हैं, अन्य पदार्थ निमित्त होते हैं और यह व्यवस्था अनादिकालसे चली आयी है, जब यह बात ध्यानमें न रही और इस सृष्टिको हमें बताना है कि कैसे हुई है तो उपादान और निमित्त इन दोनोंकी सुध न रखकर कोई तृतीय शक्तिकी कल्पना करनी होती है और उस समय फिर अनेक प्रसंग अनिर्वचनीय बन जाते हैं।

अनिर्वचनीयार्थ ख्यातिवादियों द्वारा सहेतुक अनिर्वचनीयार्थताका स्पष्टीकरण व्यवसायात्मक ज्ञानके निराकरणके प्रसङ्गमें यह दार्शनिक कह रहा है कि विपर्यय ज्ञान तो कुछ चीज नहीं है। एक अनिर्वचीनय अर्थकी ही वहाँ ख्याति हो रही है। क्या रहा विषयमें ? विपर्ययज्ञान जिसे तुम मानते हो वह केवल एक अनिर्वचनीयार्थख्याति है ऐसा ये दार्शनिक कह रहे हैं। इस बुद्धिमें जिसे स्याद्वादी विपर्यय ज्ञान कह रहे हैं इस बुद्धिमें जो कुछ अर्थ दीखा वह न तो सत् रूप है इस तरह कहा जा सकता है न असत्रूप है यह कहा जा सकता, न अन्य किसी धर्मरूप है यह कहा जा सकता, क्योंकि सीपमें यह चाँदी है इस आकार वाले ज्ञानमें यह चांदी है ऐसा जो ज्ञान किया तो इसमें बतलावो कि विषय क्या आया ? इसपर उपदेश नहीं चल

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सकता, इसकी सिद्धि नहीं हो सकती । क्योंकि जो प्रतिभासमें आया है और जो स्थल पर अर्थ है उससे वह जुदी चीज है, सीप प्रतिभासमान चाँदीसे जुदी वस्तु है, ऐसी वस्तुका किसी भी रूपमें मेल–जोल करना यह तो बेकार सी बात है. इसमें तो अपना समय बरबाद करना है । विपर्ययज्ञान कोई चीज नहीं है, इसी कारण उसका निराकरण करनेके लिये व्यवसायात्मक शब्दपर जोर देना यह भी तुम्हारा युक्त नहीं है ।

अद्वैतकी सिद्धि बिना अनिर्वचनीयार्थख्यातिकी असंभवता— इस अनिर्वचनीयार्थख्यातिके सिद्धान्तके निराकरणमें आचार्यदेव कहते हैं कि तुमने जो बताया है अनिर्वचनीय कई तरहका होता है या एक तरहकी जो अवक्तव्य तत्त्व है वह एक प्रकारका होता है कि नाना प्रकारका नाना प्रकारका तो वक्तव्य ही बन सकता है । अवक्तव्य तो एक प्रकारका है । जैसे १० आदमियोंने १० तरहकी मिठाई खाई और उनसे कोई पूछे–क्यों भाई कैसा स्वाद आया ? तो सभी यही कहेंगे कि उस स्वादको तो हम मुखसे नहीं कह सकते, वह तो अवक्तव्य है । तो उन दसोंके अवक्तव्यमें कुछ भेद है क्या ? जो विधिरूप है उसमें तो भेद किया जा सकता है, यह ऐसा है यह ऐसा है, पर अवक्तव्य तो सब एक ही तरहका है । तो इसका अर्थ है कि अनिर्वचनीय अर्थके मायने अद्वैतकी सिद्धि हो जाय तो तुम्हारे इस अनिर्वचनीय अर्थख्यातिकी सिद्धि हो । अद्वैत तो सिद्ध है ही नहीं । अद्वैतका निराकरण इसी ग्रन्थमें आगे किया जायगा वह एक बहुत बड़ा विषय है ।

स्वरूपके उपदेशगम्यता व अनुमानगम्यताकी सिद्धि— विपर्ययज्ञानका निराकरण करनेके लिये अनिर्वचनीयार्थकी सिद्धिके लिये जो तुमने यह बताया है कि इस विपर्ययज्ञानका विषय न तो उपदेशगम्य है न अनुमानगम्य है । यह बात तो आपको ही प्राप्त हो रही है । आप उपदेश देकर अनिर्वचनीय अर्थख्यातिको सिद्धकर रहे तो उपदेशगम्य हुआ ना कुछ और इसमें युक्तियां देकर उससे अनुमान भी तो बना रहे हो । तो कुछ चीज हुआ करती है ना उपदेश गम्यता और अनुमानगम्यता । जो तुम कह रहे हो चाहे वही विषय मान लो पर कहनेमें आया तो है । अनिर्वचनीय विषय कुछ नहीं रहा । और भी देखो जिस समय सीपमें चाँदीका बोध हो रहा है तो उस चाँदीकी भ्रान्तिके समयमें जो कुछ तुम्हें नजर आ रहा है वह नियत देशमें आ रहा, नियतकालमें आ रहा । नियतरूपमें आ रहा, तो वह सत्तारूपसे ही रजत प्रतिभासमान हो रहा है । भले ही वहाँ चाँदी नहीं है, है सीप, किन्तु उस विपरीत ज्ञानमें सीप अर्थ रजतरूपसे प्रतिभासमान हो रहा है । यदि सत्‌रूपसे प्रतिभासमान न हो तो चाँदी जानकर झट उसे उठानेके लिए जो प्रवृत्ति होती है वह कैसे होगी ? फिर अनिर्वचनीय नहीं कह सकते ।

विपर्ययज्ञान और विपर्ययज्ञानविराधक व्यवसायात्मकज्ञानकी सिद्धि— जो कुछ विपरीतज्ञानमें प्रतिभास हो रहा है वह सब सत्‌रूपसे प्रतिभासवान हो रहा है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भले ही वहाँ वह चीज नहीं है मगर वह चीज हुआ तो करती है, और इस संसारमें वर्तमानमें समक्ष पड़े हुए पदार्थमें उस जातिके आकारसे हमारा ज्ञान बन गया। तो सत् अर्थ प्रतिभासमें आया मगर वह सत् अर्थ जो आँखों दिख रहा है वह चाँदीके प से ग्रहणमें आया है। तो विपर्यय है मगर सद्भूत अर्थ ही ज्ञानमें हमारे आया, असत् नहीं आया इस कारण विपरीत ज्ञान अवश्य है, उसमें कोई अनिर्वचनीय अर्थका ज्ञान नहीं होता किन्तु है वह अर्थ। हुआ दूसरे रूपसे ग्रहण। यों विपर्ययज्ञान है और ऐसा ज्ञान जिस ज्ञानमें नहीं आता वह ज्ञान है व्यवसायात्मक और वही ज्ञान प्रमाण है। यह ग्रन्थ सारा प्रमाणका ग्रन्थ है, इसमें सबमें प्रमाणके स्वरूपकी ही सिद्धि की गई है और जितने भी प्रमाणके भेद आयेंगे उन सबमें यह प्रमाणका स्वरूप लगेगा। यों प्रमाणके स्वरूपकी सिद्धिके प्रसङ्गमें विपर्यज्ञानके स्वरूपकी सिद्धि की गई है।

अनिर्वचनीय अर्थमें प्रवृत्तिकी असंभवता – प्रमाणस्वरूपका विरोधी दार्शनिक यहाँ कह रहा है कि विपर्ययज्ञानमें, उल्टेज्ञानमें कोई कहनेमें आने योग्य चीज ही प्रतिभासमें नहीं आती अर्थात् विपर्ययज्ञानका विषय अवक्तव्य है अतएव अवक्तव्य विषयकी जानकारी होनेका नाम ही उल्टा ज्ञान है। उल्टा ज्ञान और कुछ चीज नहीं है. देखिये जिस उल्टे ज्ञानपर यह जगतकी सारी विडम्बना बन गई है उस उल्टे ज्ञानके स्वरूपको ही सिद्ध नहीं होने देता है यह दार्शनिक। यदि कुछ ज्ञानमें नहीं आयी अवक्तव्य चीज तो फिर सीपको जैसे चाँदी समझा तो ग्रहण करनेके लिए फिर क्यों वहाँ जाता है? अनिर्वचनीय अर्थमें प्रवृत्ति सम्भव नहीं है।

भ्रान्तिकालमें अनिर्वचनीयता न माननेपर विपर्ययज्ञानकी ही सिद्धि – शायद यह कहो कि नहीं, जब उल्टा ज्ञान हो रहा है तब तो अनिर्वचनीय अर्थ नहीं मालूम पड़ता। तब तो उसे ही समझता है और प्रवृत्ति करता है, किन्तु जब उसका वही या कोई विचार करता है तो विचार करनेपर यह प्रश्न उठता है कि सीपको यदि चाँदी जाना है तो चाँदी वहाँ सत् है या असत्? सत् हो तो झूठा ज्ञान क्या और यदि सत् नहीं है तो असत्का बोध क्या? जो वह प्रतिभासमें आ रहा वह सत्रूप है न असत्रूप है, किन्तु अवक्तव्य है, यह बात विचार करनेपर ज्ञात होती है, पर जिस समय भ्रम हो रहा है उस समयमें अनिर्वचनीय नहीं मालूम होता। तब आचार्यदेव कहते हैं कि तुमने तो इसमें विपर्ययज्ञानकी सिद्धि ही कर दी। जब भ्रम हो रहा है उस समय तो अवक्तव्य अर्थ नहीं आया। उस समय तो सत्तरूपसे वह पदार्थ आया, बादमें जब विचार किया तब उसका स्वरूप नहीं बन सकता, सो अनिर्बचनीय तब तो इससे तो विपर्ययज्ञानकी सिद्धि बराबर होती है।

विपरीतार्थख्यातिके स्वरूपपर झुंझलाहट—अब वही दार्शनिक जब बहुत झुंझला गया, कुछ रूठ गया तब कहता है कि तुम्हारी विपरीत ख्याति भी तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं बनती, क्योंकि उसमें प्रतिभासका विरोध है। जो कोई सीपको चाँदी जानता है तो क्या वह इस रूपसे जानता है कि हम यह उल्टा ज्ञान कर रहे हैं ? यह विपरीत अर्थ है ऐसा क्या उनके ज्ञानमें आता है ? तो विपरीत अर्थकी ख्याति कैसे बने ? जो उल्टा ज्ञान कर रहा उसके ज्ञानमें क्या इस तरह उल्टा ज्ञान आ रहा कि यह विपरीत है ? नहीं आता ना ? यदि आया तो उल्टा ज्ञान क्या रहा ? तो विपरीत ज्ञान करने वाले पुरुषके चित्तमें यह विपरीत पदार्थ है ऐसी जानकारी हो तो विपरीत ख्याति बने पर ऐसा तो किसीको प्रतिभास नहीं होता। इसलिए विपरीतख्याति भी युक्त नहीं है।

विपरीतार्थख्यातिका अर्थ - विपरीतार्थख्यातिके समाधानमें आचार्यदेव कहते हैं कि कौन यह कहता है कि विपरीत ख्यातिका यह अर्थ है कि यह पदार्थ विपरीत है, ऐसी जानकारी होनेका नाम विपर्ययज्ञान है किन्तु है क्या, कि जो बात प्रतिभासमें आ रही है उससे उल्टा पदार्थ है और उस पदार्थसे उल्टा प्रतिभास हो रहा है इसका नाम है विपरीतख्याति। देखिये जगतके जीव इस ही विपर्ययज्ञानके वश हो कर तो संसारमें रुल रहे हैं। है पदार्थ और तरह, जानते हैं और तरह। देह है अचेतन, पर इसको निरखकर यह प्राणी समझता है कि यह मैं जीव हूं, यह तो विपर्ययज्ञान है। अब कोई इसमें प्रश्नोत्तर करके इस विपर्ययज्ञानका स्वरूप बिगाड़े तो उसका एक हठवाद है। लोकमें भी, परमार्थमें भी सब जगह विपर्ययज्ञान बराबर चलता है।

बाह्य वैभवोंमें विपर्ययज्ञानका रूपक - विपर्ययज्ञान आत्महितके विरुद्ध अनेकरूपसे अनेक पदवियोंमें चलता है। हो तो कोई अत्यन्त भिन्न अचेतन बाह्य वैभव और माने कि यह मेरा स्वरूप है, यह मेरा हितकर है, यह मेरी वस्तु है, यही तो विपर्ययज्ञान है। वहाँसे कुछ लौटा, कुछ लौकिक शिक्षासे भी मालूम किया कि ये बाह्य मकान आदिक मेरे स्वरूप नहीं है तो उनसे हटकर जो अचेतन पदार्थ हैं परिजन मित्रजन, उन्हें माने कि यह मेरा है यह विपरीत ज्ञान हुआ। अब यहाँ देख लीजिए शल्यके ढङ्गसे ज्ञान किया जाय तो शल्य अवश्य होती है। शल्यका ढङ्ग यह है कि जो मेरा नहीं है उसे समझें कि यह मेरा है तो यह बुद्धि ही शल्यको उत्पन्न करती है। और अपने–अपने मनमें इसका अनुभव और प्रयोग कर लीजिए कि जितनी दृष्टि अधिकाधिक आशक्ति रूपसे या निर्णयरूपसे परिजनमें हम रखते हैं, क्या किसी अन्य आत्मा पर भी कुछ करुणाकी बुद्धि अथवा उपकारकी बुद्धि हम रखते हैं ? अपना जो तन, मन, धन, वचन है वह सब कुछ उन परिजनोंके लिए ही अर्पण किया जा रहा है तो यह आशक्ति नहीं है तो फिर और क्या है ? परिजनके अतिरिक्त अन्य जीवोंपर भी तो कुछ ध्यान रखना चाहिए।

देहमें विपर्ययज्ञानके हटावकी कठिनाई—कदाचित् इन परिजनोंसे कुछ थोड़ा सा हटाव हो जाय तो इस शरीरसे हटाव होना बड़ा कठिन है। योद्धा लोग

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

युद्धमें बड़े गौरवके साथ जान-बूझकर उत्साहसे अपना मरण भी कर जाते हैं वे मोही जन भी मरण भी पसंद करते हैं तो इस देहके ममत्वके कारण। लोग तो यह आशङ्का करेंगे कि जब अपने प्राण खो दिये तो उसमें इस देहकी ममता कहाँ रही ? लेकिन विचार करो तो वहाँ भी कारण यही मिलेगा देहकी ममता। मेरा देश विजयी हो, मेरा यश हो, मेरी बात न गिरे, ऐसा भाव तो रहता ही होगा, तो इस भावमें उसने इस देहको माना कि यह मैं हूँ। इस देहको जब मैं मान रहा है तो उस ही आधारपर उसके फिर यश आदिकके परिणाम होते हैं। तो देहमें ममता परिणाम होनेसे ही यश आदिकके अभिमान बनते हैं। यदि देहको यह मैं हूँ ऐसा वह न मानता हो और मैं चैतन्यमात्र हूं इस प्रकारकी प्रतीति रखता हो तो वह यह भाव नहीं कर सकता कि मेरा यश और नाम फैले। उस चित्स्वरूपका यश क्या इस दुनियामें ? वह तो इस देहकी ममतासे अपने आपका घात कर रहा है।

आत्मघातमें भी देहकी ममता कारण—कभी परिजनोंमें कोई परस्परमें विरोध हो जाय और वह विरोध इतना बढ़ जाय कि जो सहन न कर सके और कोई अपने आप अपने प्राणोंका घात कर रहा हो जिसे आत्महत्या कहते हैं, यह आत्महत्या भी उसने देहकी ममताके कारण की। वह किसलिये ? कि जो बात उसे परिजनोंकी नहीं रुची, उसने मुझे यों कहा, उसकी निगाहमें मैं कुछ भी नहीं, मेरी कोई बात ही नहीं मानी जाती ऐसा मेरा मेरा जो वह बार बार लगा रहा है तो वह इस देहको निरखकर कह रहा है। या उस चिन्मात्र स्वरूपको निरखकर कहा है ? वह तो इस देहको ही निरखकर कह रहा है। तो उस आशयसे प्रेरित होकर जो उसने आत्महत्या की वहाँ पर भी उसने देहकी ममताके कारण आत्महत्या की। भैया ! यह देहकी ममता हट जाय यह अत्यन्त कठिन चीज हो रही है। यही है विपर्ययज्ञान कि जो मेरा स्वरूप नहीं है, जो तत्त्व नहीं है उसे ही अपनाये कि यह मैं हूँ यही है विपर्ययज्ञान।

विपर्ययज्ञानके स्वरूपमें एक शङ्का—विपर्ययज्ञानमें जो कुछ जाननेमें आ रहा है उसमें जाननेमें तो आ रहा है कुछ और पदार्थ है वहाँ और ऐसा ही जानना कि पदार्थ है कुछ और, प्रतिभास हो रहा है कुछ, उस हीका नाम है विपर्ययज्ञान। इसपर यह शङ्काकार कहता है कि कुछ अँधेरे-उजेलेमें जैसे कोई खड़ा तो था ठूठ और जान लिया पुरुष तो पुरुष जैसा मालूम होता है ऐसे इस ज्ञानमें और जो प्रतिभास नहीं हो रह ऐसे ठूठको तुम बताते कि पुरुष है। जैसे रस्सीको साँप समझा तो उसके ज्ञानमें विषयभूत पदार्थ क्या है ? साँप तो है नहीं, क्योंकि वहाँ विषयभूत पदार्थ रस्सी ही है, किन्तु साँपरूपसे विषय किया गया है। तो वहां शङ्काकार यह कहता है कि जो पदार्थ प्रतिभासमें नहीं आ रहा तो वह अप्रतिभासमय पदार्थ ज्ञानका विषय कैसे बन जायगा ? तो ज्ञान तो करें हम और कहते यह हैं कि इस ज्ञानका विषय भूत पदार्थ है और कुछ विषय कुछ भी निकल रहा, फिर सम्यग्ज्ञानका भी स्व-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रूप नहीं बन सकता कुछ घटपट आदिक पदार्थ हो और पुरुष जानते रहे, घटपट आदिक जान रहे हैं और नाना पदार्थोंका सत्त्व बन जाय तो यह बात ठीक नहीं बैठती।

विपर्ययज्ञानकी साधना—विपर्यय ज्ञानके स्वरूपमें जो शङ्का हुई उस शङ्काके उत्तरमें आचार्यदेव कहते हैं कि ठूंठमें जो संशयज्ञान हुआ है वहां इस पुरुषके प्रतिभास वाले ज्ञानमें भी ठूंठ ही विषय बन रहा है। इतनी गल्ती हो गई कि ठूंठका जो स्वरूप है उसका निर्णय नहीं रहा और कोई दोष लग गया, कम दीखता है या नेत्रमें कोई दोष आ गया है इसकी वजहसे ठूंठ ही पुरुषाकार रूपसे प्रतिभासमान हो रहा है और थोड़ी देर बाद जब निकट पहुंचता है तो वह खुद समाधान कर लेता कि यह पुरुष नहीं, यह तो ठूंठ है। विपर्ययज्ञानके स्वरूपका निराकरण नहीं बन सकता।

निर्णयकी दृढता व हठकी दृढता – भैया! ज्ञान क्षेत्रमें दृढ़ता वाले ज्ञान दो ही तो हैं एक सम्यग्ज्ञान और एक विपरीत ज्ञान। जैसे सम्यग्ज्ञानमें निर्णयकी दृढता बसी है यह पदार्थ यह ही है इसी प्रकार विपरीत ज्ञानमें भी हठकी दृढ़ता बसी हुई है। जैसे सम्यग्दृष्टि पुरुषको आत्मस्वरूप में शंका नहीं है उसका दृढ़ निर्णय है कि यह मैं ज्ञानमात्र हूँ चैतन्य स्वरूप हूँ, सबसे न्यारा हूँ, अमूर्त हूँ इसी तरह विपर्यय ज्ञान वालेको भी अपनी मान्यतामें उस काल बड़ी दृढ़ता है। उसे इसमें कोई शङ्का नहीं हो रही है कि मैं यह देह हूँ, इतने लड़के बच्चों वाला हूं, ऐसी पोजीशन वाला हूं, इसमें उसे संशय नहीं है। ऋषीजन समझाते हैं कि आत्मा देहसे न्यारा है। है भी न्यारा या नहीं, क्या यह देह ही जीव है या इससे अतिरिक्त कोई जीव है इस संशयमें दृढ़ता कहाँ है। और साधारणतया थोड़ासा आभास कर लिया है, आत्मचर्चा सुन रखी है, पर उसके सम्बन्धमें निर्णयकी आकांक्षा भी न हो सके तो वह है एक अनध्यवसायज्ञान। उसमें भी दृढ़ता कहां अब कर्तव्य यह है कि हम जो विपरीत ज्ञान करके अपनी दृढ़ता बना रहे हैं बजाय इसके सम्यग्ज्ञान करके दृढ़ता बनायें।

सम्यग्ज्ञान व विपर्ययज्ञानकी दृढतादिमें अन्तर – सम्यक् व विपरीत ज्ञान इन दोनोंकी दृढ़तामें अन्तर है। विपर्ययज्ञानकी तो क्षणिक क्षणिक दृढ़ता है और सम्यग्ज्ञानकी स्थायी दृढ़ता है। आज विपर्ययज्ञान किस रूपसे कर रखा है कि यह मैं हूँ ऐसा मानकर पर वस्तुओंमें ममता बसा ली है। इस ही ममताके कारण रात दिन बेचैन रहा करते हैं। इस ममताके आनेका कारण है विपर्ययज्ञानमें दृढ़ता चिर कालतक नहीं हो सकती कि उस विपरीत ज्ञानमें जिसे विषय किया है उस ही पदार्थका यह प्राणी विषय करता रहे। इसका विषय बदलता रहता है। किन्तु सम्यग्ज्ञानका विषय तो केवल एक अन्तस्वत्त्व है, वह विषय कभी बदलता नहीं है। जैसे इन लौकिक प्रसंगोंमें कभी कोई बहका दे तो इस बहकानेसे वह अपने पूर्व विचारोंको छोड़ देगा और अन्य विचार ग्रहण कर लेगा। इसी प्रकार आत्मतत्त्वके सम्बन्धमें कोई बहकाये तो सम्यग्दृष्टि जीव बहककर कुछ अन्य तत्त्व ग्रहण न करेगा अपनेमें।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सम्यग्ज्ञानमें दृढ़ता है, निःशंकता है विपरीतज्ञानमें एक तात्कालिक हठ है किन्तु निर्भयता नहीं है।

विपर्ययज्ञानमें उभयलोकभय मिथ्या जाननेमें सदा शंका रहती है। यह देह मैं हूं ऐसा जान रहे हैं तो उसमें कितने-कितने भय उत्पन्न हो रहे हैं, कहीं मैं मर न जाऊँ। इस देहमें जिस जीवको आत्मबुद्धि है, यह मैं जीव हूं इस प्रकारका जिसे विपरीत निर्णय है ऐसे पुरुषको यह भी शंका होती है कि मरकर मैं कहीं नरकगतिमें न पहुंचू। अन्य बुरी देह न पाऊँ यह भी एक देहमें आत्मबुद्धि करनेके क्षेत्रकी ही एक झांकी है।

विपर्ययज्ञानमें वेदनाभय —जिसे देहमें आत्मबुद्धि हुई है ऐसे पुरुषको वेदना का भय अत्यन्त अधिक रहता है। कहीं यह बढ़ न जाय, बड़ा क्लेश होगा, अनेक भय उत्पन्न होते हैं। शारीरिक दुःख कब बढ़ता है ? जब इस देहमें आशक्ति हुआ करती है। यह सम्यग्दृष्टि जीव तो समझता है कि इस देहके चले जानेपर तो मेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं होता वह तो मात्र उसका ज्ञाता रहता है। एक जीवका देहसे बन्धन होनेके कारण कुछ थोड़ी वेदना होती है पर उस वेदनामें वह तो यही समझता है कि मैं तो इस देहसे भी जुदा हूँ, यह दर्द होना तो पुद्गलकी चीज है। इस पुद्गल शरीरमें यह रोगादिका परिणमन हो रहा है, इनसे मेरे आत्माका कुछ सम्बन्ध नहीं, यों दृढ़ता सम्यग्दृष्टि पुरुषके अन्दर होती है। विपर्ययज्ञान वाला तो झट घबड़ा जाता है, उसके ज्ञानमें दृढ़ता नहीं रहती है, उसे तो जगह-जगह भय उत्पन्न होता रहता है।

विपर्ययज्ञानमें मरणादि भय बहुतसे लोगोंका मरण होते देखता रहता है सो वह भी घबड़ाता रहता है कि कहीं मैं मर न जाऊँ, अगर मैं मर गया तो क्या होगा। विपर्ययज्ञानमें इस देहमें आत्मबुद्धि होनेसे वह मरणसे भी घबड़ाता रहता है। और इस कुबुद्धिमें ऐसे-ऐसे आकस्मिक भय बन जाते हैं कि जिनके होनेकी कोई आशङ्का नहीं। अभी यह छत बिल्कुल नई बनी है, इसके गिरनेकी कोई आशंका नहीं पर विपर्ययज्ञानमें उसके यह आशंका हो सकती है कि कहीं यह छत न गिर जाय, मैं इससे दबकर न मर जाऊँ, क्या हाल होगा मेरा, यों आशंका बनी रहती है विपर्ययज्ञानमें। विपर्ययज्ञानको अपनी अरक्षा व अगुप्तिका भी भय रहता है। सम्यग्दृष्टि पुरुष तो जो कुछ भी होता है उस सबका ज्ञान रहता है, सब स्थितियोंमें प्रसन्न रहता है। घर गिरता है तो गिरे, घाटा होता है तो हो, वह तो जानता है कि इससे मेरा कुछ भी बिगाड़ नही है।

आत्महितके लिये लज्जाशीलता व निर्लज्जता—सच पूछो तो सम्यग्दृष्टि पुरुष कई बातोंमें निर्लज्ज है। दरिद्रतादिक उसकी कैसी भी हालत हो जाय, दुनिया उसे कुछ भी कहे, पर वह उन बातोंसे लज्जित नहीं होता। वह इन मायामयी पुरुष

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समूहोंको कुछ भी महत्त्व नहीं देता। ये लोग कुछ भी कहें इस बातमें वह सम्यग्दृष्टि पुरुष तो निर्लज्ज है। हाँ उसे लज्जा इस बातमें है कि मैं कोई खोटा कर्म करूँ, धर्म-विरुद्ध विषयोंमें प्रवृत्त होऊँ तो मैं लज्जित होऊँ। मैं तो एक शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभाव-मात्र प्रभु हूँ, इस प्रभुके प्रति ऐसे खोटे कार्य करना यह एक लज्जाकी बात है। इसके सिवाय बाकी लोकेषणाकी ओरसे वह सम्यग्दृष्टि जीव निर्लज्ज है, क्योंकि उसे इन बाह्य समागमोंमें कोई महत्त्व नहीं जच रहा है। सब विनाशीक चीजें हैं। ये जितने भी जीव हैं ये सब अपने–अपने कर्मोदयवश अपनी–अपनी भावनावश पर्यायोंको भोग रहे हैं, ये भी सदा न रहेंगे, ये भी गुजर जायेंगे, यह मैं चाहने वाला भी गुजर जाऊँगा। यहाँ इस लोक लाजको बढ़ाकर अपनेमें शल्यको बढ़ाना यह विवेक नहीं है। मेरा कोई जीव यहाँ शरण हो तो उसे मैं यहदिखानेकी कोशिश करूँ कि मैं बहुत अच्छा हूँ, बड़ी मेरी पोजीशन है, यहाँ तो सुनने वाला कोई है ही नहीं। मैं किसको प्रपन्न रखनेके लिए अपने आपको धर्मपथसे पतित करूँ और अपनेको शल्यमें बनाये रहूं ऐसा विवेक सम्यग्दृष्टि पुरुषके रहता है।

ज्ञानीके भयोंका अभाव –ज्ञानीको कोई भय नहीं कि इस लोकमें कोई गुजारा नहीं होगा। तो गुजारा तो कीड़ा मकोड़ा पशु पक्षियोंका भी होता है। केवल एक शरीर ही तो रखना है किसलिए कि कुछ श्रेष्ठमन पाया है तो धर्ममार्गमें भी चलें इसके लिए शरीर भी रखना है, यही है उसका मूलमें निर्णय और इसी आत्मदर्शनके प्रसादसे इस परलोकका भी इसे भय नहीं होता। भय तो परलोकका वह करे जो खोटे कामोंमें रहता हो उसको ही तो दुर्गतिकी शंका होगी। और, जिसे आत्मज्ञान है वह तो जानता हैं कि मैं आत्मा तो सर्वसे भिन्न हूं। इस मुझ आत्माका इस लोकमें क्या और इस परलोकमें क्या ? मेरा तो यह ही मात्र में हूँ। उसे वेदनाका भी भय नहीं हैं। शरीरमें फोड़ा है तो वह ज्ञाता हो रहा है। जैसे दूसरेके शरीरमें बाधा हो तो दूसरा पुरुष उसका ज्ञाता रहता है उसी तरह अपने शरीरमें भी जो वेदना होतीं है उसका वह ज्ञाता रहता है। सम्यग्दृष्टि पुरुषको शंका नहीं रहती, अरक्षाका भय नहीं रहता। मेरी रक्षा कैसे हो इसकी उसे चिन्ता नहीं रहती। तो सम्यग्दृष्टि पुरुषको कभी किसी भी बातका भय नहीं रहता, विपर्ययज्ञानमें तो सदा भय बना रहता है, अतएव विपर्ययज्ञान एक अहितकारी भाव है उस विपर्ययज्ञानको त्यागना चाहिए और सम्यग्ज्ञानमें अपनी प्रवृत्ति करना चाहिए।

प्रमाणस्वरूपमें व्यवसायात्मक विशेषणकी सार्थकता--अब स्याद्वादी विपर्ययज्ञानके प्रकरणपर कह रहे हैं कि अरे दार्शनिको ! विपर्ययज्ञान दूर करने योग्य है, यह तो सही है, पर तुम विपर्ययज्ञानके स्वरूपका ही निषेध कर रहे हो कि विपर्यय ज्ञान कुछ चीज नहीं है। अरे, कुछ चीज नहीं है तो इतनी बड़ी आपत्ति दुनियाको लग गई है यह किसका फल है ? विपरीतज्ञानका फल है। विपर्यय ज्ञान है तो उसके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निराकरणके लिए प्रमाणके स्वरूपमें व्यवसायात्मक पद दिया है कि जो स्व और अपूर्व अर्थका व्यवसायात्मक निर्णायक ज्ञान हो उसे प्रमाण कहते हैं। इस ग्रन्थमें प्रमाणके स्वरूपकी ही चर्चा है आदिसे अन्त तक, क्योंकि यह दार्शनिक ग्रन्थ है। इसकी भूमिका यही है कि पहिले इस प्रमाणका तो निर्णय करलें कि जिस प्रमाणके द्वारा तुम अपनी बात सही बता पावोगे और दूसरेकी बात दोषयुक्त बता सकोगे। यह तो प्रमाण और अप्रमाणाभासके स्वरूपनिर्णयपर अवलम्बित है। तो अपना परम कर्तव्य है कि आत्मतत्त्व और अनात्मतत्त्वका सम्यक् निर्णय करें, इसकी ही जानकारी करें और इसके ही ध्यानका अधिकाधिक यत्न करें। सर्व सङ्कटोंसे बचा सकने वाला हमारा आत्मज्ञान ही होगा।

विपर्ययज्ञानके स्वरूपका भंजन करके विपर्ययविरोधी प्रमाणस्वरूपकी विराधनाका प्रयास — विपर्ययज्ञानका स्वरूप कुछ नहीं है, यह सिद्ध करनेके लिए अनेक दार्शनिकोंने अपना अपना अभिप्राय रखा है। किसीने अख्याति कहा है अख्यातिका अर्थ है पदार्थकी ख्याति न होना, पदार्थकी जानकारी न होना अथवा अजानको को अख्याति कहते हैं। उनका मंतव्य था कि विपरीत ज्ञानमें किसी भी पदार्थकी जानकारी नहीं है जो जान रहा है वह तो है ही नहीं। किसीने यह कहा कि असत् ख्याति है, जो असत् है जिसका अभाव है उसकी जानकारी है विपर्ययज्ञान जैसे रस्सीको साँप जाना तो साँप वैसे है नहीं। असत्की जानकारी है. उल्टा ज्ञान कुछ नहीं है। किसीने कहा कि जो मनमें विशेष रहता था उस चीजकी झलक हुई। जैसे सीप देखो और चाँदीका बोध हुआ उसको देखकर चाँदी समझ ली। कोई कहे कि सब जगह ज्ञान ज्ञानकी ही समझ है, पदार्थ तो दुनियामें है ही नहीं। तो किसीने कहा कि अनिर्वचनीय पदार्थ जाननेमें आया जिसे हम न सत् कह सकते न असत् कह सकते। विपरीत ज्ञान कुछ भी नहीं है।

स्मृतिप्रमोषका अभिप्राय करके विपर्ययज्ञानके स्वरूपके खण्डनका प्रयास विपर्यज्ञानके स्वरूपके विरोधमें सब अभिप्रायोंके बाद अब एक अंतिम अभिप्राय आ रहा है, इसका नाम है स्मृतिप्रमोष। इसका मंतव्य है कि जिस किसी भी जगह पदार्थमें उल्टा ज्ञान हो रहा हो वहाँ और कुछ बात नहीं, कोई स्मृति की जा रही है और वह अधूरी रह गयी या स्मृति इतनी भर है, विपरीतज्ञान कुछ नहीं है। जैसे पड़ी थी सीप, जान लिया चाँदी तो इस जानने वालेने चाँदीका स्मरण तो किया पर पूरे ढंगसे नहीं हो पाया, स्मृति गड़बड़ हो गयी या अधूरी रह गयी। उस स्मृतिके दोष युक्त रह जानेका ही नाम विपर्ययज्ञान है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। देखिये स्मृतिप्रमोषके मन्तव्यमें कैसी युक्ति खोजी है कि विपर्ययज्ञानका स्वरूप ही मिट रहा है।

स्मृतिप्रमोषवादी द्वारा विपर्यय ज्ञानकी उत्पत्तिके कारणोंके अभाव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रतिपादन—स्मृतिप्रमोषवादी कह रहे हैं कि भाई तुम्हारे माने गए विपर्ययज्ञानमें यही तो हुआ ना कि सांपमें यह चाँदी है ऐसा प्रतिभास हुआ, पर विचार करनेपर यह प्रतिभास, यह ज्ञानयुक्त ही नहीं बैठता, क्योंकि इस प्रकारके ज्ञानकी उत्पत्ति होने का कोई कारण नहीं मिल रहा है। यह कहा जा सकता है एक पदार्थ आखोंसे दखिा तो करेगा आँखोंमें था दोष सो उन दोषोंके कारण पड़ी तो थी सीप और जान गए चांदी यही तो अधिकसे अधिक कह सकेंगे पर इसका भी तो विचार करलें। नेत्रके दोष हैं तो उन दोषोंसे होता क्या। क्या दोषोंने नेत्रकी शक्तिकी रुकावट करदी या उन दोषोंने नेत्रकी शक्तिका अभाव ही कर दिया। क्या वजह है कि पड़ी तो थी सीप और जानगए हम चांदी। इसमें कारण क्या है, दोषोंने क्या किया ? यदि यह कहो कि दोषोंने नेत्रादिक इन्द्रियोंकी शक्तिका प्रतिषेध कर दिया, रुकावट कर दो तो यदि रुकावट होती है तो कुछ भी जानकारी न होना चाहिए। उल्टा भी ज्ञान क्यों हो ? क्योंकि मान लो कोई गेहूं रखा है तो उसे बोनेपर कहीं चना तो नहीं उग जायगा। कितना भी दोष हो इन्द्रियमें, पर दोष होनेसे कहीं और का ज्ञान तो न हो जायगा। जो बोनेसे कहीं अन्य प्रकारका अन्न बनता है क्या ? इसी कारण प्रध्वंस भी नहीं होता शक्तिका। आंखमें कोई कांच वगैरह दोष हो जायें तो उन दोषोसे भी क्या इन्द्रियकी शक्ति मिट जायगी ? शक्ति नहीं मिट सकती। भले ही दोष हो जाय, तो विपर्ययज्ञान हो कैसे गया ? स्मृति प्रमोषके लिये यह बात रख रहे हैं कि आखिर उल्टा ज्ञान हो कैसे गया यह सब स्मृति प्रमोष मानने वाला दार्शनिक कह रहा है।

विकृत स्मरण—भैया ! यहाँ प्राय: सब लोगोंको उल्टा ज्ञान कभी कभी हो भी जाता है। बात हो कुछ और जान ली जाय कुछ पर यह दार्शनिक कह रहा है कि उल्टा ज्ञान कोई चीज ही नहीं है. क्योंकि चक्षु आदिकसे वही पदार्थ जाना जायगा जिसका इन्द्रियसे सम्बन्ध हो जाय और वर्तमानमें मौजूद हो, पर जो न तो इन्द्रियसे सम्बद्ध वहाँ हो और न वहाँ वर्तमान है, फिर इन नेत्रोंके द्वारा वहां वह आकार कैसे बन गया ? जो चीज नहीं है वह बन कैसे गयी ? बात इतनी है कि स्मरण आया चाँदीका तो स्मरण आते–आते कुछ गड़बड़ी हो गयी। पूरा स्मरण नहीं बन पाया, क्योंकि पूरा स्मरण बने तो इस तरह ज्ञान हो ओह ! वह चांदी है, स्मरणका आकार तत्‌के रूपसे होता है।

विपर्ययज्ञानमें आकारके सम्बन्धीके अनिर्णयका पक्ष और भी सोचिये, ज्ञानमें यह आकार किसका आया बतलावो जरा ? चाँदीका आकार तो आता नहीं, क्योंकि वहाँ मौजूद नहीं, ज्ञानका आकार भी नहीं आया क्योंकि जैन लोग वहाँ केवल ज्ञानका आकार तो नहीं मानते। जैनसिद्धान्तके विरोधमें कहा जा रहा है कि वहाँ तो पदार्थका आकार प्रतिभासमें माना। तो ज्ञानका भी आकार नहीं, फिर आकार किसका आया ? विचार करनेपर विपरीत ज्ञान बन नहीं पाता, उसका कोई स्वरूप

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उपयुक्त नहीं बैठता, अतएव विपर्ययज्ञान कुछ नहीं है। विपर्ययज्ञान नहीं रहा तो फिर किसके निराकरणमें व्यवसायात्मक शब्द लगाते हो ?

गृहीत और अगृहीतके प्रतिभासका विकल्प – और भी सुनो ! जाना कि यह चाँदी है, थी सीप, तो ऐसा जिस पुरुषने ज्ञान किया उसने चाँदीका ग्रहण करके यह ज्ञान किया या चाँदीका ग्रहण न किए बिना यह ज्ञान किया ? ग्रहण किए बिना तो ज्ञान होता ही नहीं ! अन्यथा अट्ट-सट्ट कैसा ही ज्ञान बन जाय। क्योंकि बिना ग्रहण किए भी ज्ञान होने लगा। और, यदि यह कहो कि चाँदीका ग्रहण करने वाले पुरुषके यह ज्ञान हुआ तो उसके फिर ऐसा ज्ञान होना चाहिए कि वह रजत है यह, क्योंकि यह जो ज्ञान है जिसे उल्टा ज्ञान कहो, विपर्यय ज्ञान कहो, स्वरूपसे उसमें क्या क्या बातें बनीं, तब यह ज्ञान हुआ, यह बात जरा सुननेकी है। किस तरहसे वह होता है। प्रकरण यह है कि सम्यग्ज्ञान तो होता है ना, पदार्थ जैसा है वैसा ही जाननेमें आ जाय इसका नाम है सम्यग्ज्ञान। तो इसके विपरीत उल्टा ज्ञान भी तो हो सकता है। पदार्थ है और कुछ, जाननेमें आ गया और कुछ तो यह कहलाया विपर्ययज्ञान. पर यहाँ वह दार्शनिक यह कहता कि विपर्ययज्ञान कोई चीज ही नहीं होती। क्योंकि वह जो ज्ञान बना है वह इन चार कारणोंसे बना है। वे कारण सुन लीजिए !

स्मृतिप्रमोषमें चार कारणोंका वर्णन स्मृतिप्रमोषवादी कितनी खोज करके यह बात रख रहा है। एक तो इन्द्रियाँ काम कर रही हैं। यह चाँदी है, ऐसा जो ज्ञान बन रहा है सो इन्द्रियाँ काम कर रही हैं या नहीं कर रही हैं ? और संस्कार काम कर रहे हैं चाँदीको हमने बराबर समझा तो था ना, तब तो विपर्यय ज्ञान बना है यह। तो संस्कार भी काम कर रहा है और सादृश्य भी काम कर रहा है। सीपके समान ही तो चाँदी है किसी रूपमें। जैसा उसका रूप है वैसा ही चाँदीका रूप है, तो कुछ सदृशता भी है तीन बातें हुई और चौथी बात है दोष। इन्द्रियोंमें दोष भी है तब तो सीपके बजाय चाँदी जाननेमें आ गयी। तो इस तरह इन चार साधनोंसे विपर्ययज्ञान बना है। विपर्ययज्ञान कुछ चीज नहीं, वह केवल एक स्मृतिकी भूल है, स्मरणका अधूरापन है क्योंकि चाँदी ग्रहणमें आयी। तो यह स्मरण ज्ञान सही तो न बने और ग्रहणमें आये तो जो चीज पहिले ग्रहणमें आयी उसका ज्ञान बने तो हमेशा इस प्रकार बनता है कि वह है यह। जैसे हम किसी मनुष्यको देखते हैं और देखते ही स्मरण हो आता है तो इसी तरह तो स्मरण होगा कि यह वह है। चाहे अन्तरङ्गमें ऐसे शब्द न उठायें फिर भी ऐसा ही बोध होता है सबको, जिसको स्मरण होता है। तो इस तरहका ज्ञान बनना चाहिए कि वह रजत है यह, किन्तु ऐसा ज्ञान नहीं बन सकता कि यह रजत है। वह चाँदी है यह ज्ञान तो सही स्मरण है और यह रजत है यह ज्ञान स्मृतिकी भूल है अतएव विपर्ययज्ञान कोई चीज नहीं है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पदार्थमें अवभासीके संसर्ग विकल्प   अब स्मृति प्रमोष वाले ही कहते जा रहे हैं कि बतलावो सीपमें चाँदीका सम्बन्ध है या नहीं, यदि नहीं है और फिर भी जान जाय तो जिस चाहेमें जिस चाहेका सम्बन्ध जोड़ दो। आकाशमें आकाश पुष्पका सम्बन्ध जोड़ दो फिर तो असत्ख्याति बन गई। और, सीपमें चाँदीका संसर्ग है ऐसा कहोगे तो प्रकट गलत बात है। वहाँ चाँदीका सत्त्व ही नहीं है इस कारण जो यह ज्ञान हो रहा है कि यह चाँदी है यह कोई एक ज्ञान नहीं है। ये मिलावो दो ज्ञान हैं, यह चाँदी है इसमें "यह" अंश तो प्रत्यक्ष ज्ञान आया और चाँदी है इसमें स्मरण आया। खूब विचार कर सुनिये कि इसमें दो बातें कुछ मालूम होती हैं या नहीं ? सीप पड़ी थी जान गए चांदी तो इसी तरहसे तो जानते हैं ना कि यह चाँदी है सो यह तो हो गया प्रत्यक्ष इंद्रियसे देखा, तथा यह चांदी है यह हो गया स्मरण। लेकिन स्मृति अधूरी रह गयी उसमें दोष आ गया, चीज कुछ है स्मरण कुछका हुआ, और उस का स्मरण भी पूरे रूपसे नहीं आया क्योंकि स्मरणका पूरा रूप यही हैकि किसी भी चीजका स्मरण करके अपने ज्ञानमें यह प्रत्यय होना चाहिए कि मैं स्मरण करता हूँ। तब तो वह स्मृति सही है, पर जहाँ यह विकल्प न आये कि मैं स्मरण कर रहा हूँ और फिर स्मरण जैसा ढंग बना तो यह गलत स्मरण है। तो अधूरी स्मृतिका नाम विपर्ययज्ञान है। विपर्ययज्ञान और कोई चीज नहीं है।

अपनेमें अपनी खोटके खोजका प्रयास— भैया ! यह सब खोज अपने आपमें की जा रही हैं। किसी अन्यकी चर्चा नहीं है। ज्ञानस्वरूप यह आत्मा है और उस ही ज्ञानस्वरूप आत्माकी यह चर्चा चल रही है कि मैं किस प्रकारसे ज्ञानरूप हूँ, मेरा स्वभाव यथार्थ जाननेका है, लेकिन जब कोई दोष आता है, मिथ्यात्वकर्मका उदय आये, इन्द्रियमें कोई दोष आये तो फिर मिथ्या ज्ञान बन जाता है। मिथ्या ज्ञान करना जीवका स्वभाव नहीं है, पर होता जरूर है जब तक कि यह आत्मा दूषित है इसके मिथ्यात्वका उदय है पर दूसरा दार्शनिक यह कह रहा है कि मिथ्याज्ञान कोई चीज नहीं है सब हमारे ज्ञानकी कमजोरी है, दोष है या अन्य अन्य बातें बतायीं किन्तु विपर्ययज्ञान नामकी कोई वस्तु नहीं हैं। इसका परिणाम यह है कि जो प्रमाणका स्वरूप बताया है यह साधक नही हो सका।

प्रमाणस्वरूपमें प्रकाश और द्रव्यदृष्टिमें प्रकाश—भैया ! प्रमाण सच्चे ज्ञानका नाम है। सच्चे ज्ञानमें पदार्थकी समस्त बातें ज्ञात रहती हैं। किसी भी पदार्थ में हैं तो अनेक बातें पर उनमेंसे केवल एक अंशकी ही हठ करता जाय तो वह कहलाया कुनय। और, अन्य अंशीको मानकर किसी एक अंशकी मुख्यत से देखे या वर्णन करें तो वह है नय। जैसे आत्मा नित्य है या अनित्य ? ये दो प्रश्न सामने हैं ? यह जीव सदा रहता है क्षण-क्षणमें मिट जाता है ? अब इसकी परख करिये, जब आत्माको द्रव्य स्वरूपकी ओरसे निरखते हैं तो यह निर्णय आता कि आत्मा नित्य है सदा रहने वाला है न यह कभी उत्पन्न होता न यह कभी मिटेगा, शाश्वत है और जब हम पर्याय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दृष्टिसे देखते हैं यह आत्मा किस किस रूपपरिणमता है यों परिणमन दृष्टिसे हम देखते हैं तो आत्मा अनित्य है। यों नित्यानित्यात्मक आत्मा है। उसमें जहाँ केवल द्रव्यस्वरूपका ही हठ किया वह नित्य एकान्त माना है। आत्मा नित्य है और ऐसा नित्य है कि अपरिणामी है। उसमें कोई परिणमन ही नहीं होता। यदि परिणमन मान लिया जाय तो नित्यताका एकान्त नहीं बन सकता। तो जो नित्य एकान्तको मानता है, हठ करता है वह अपरिणामी नित्य कहलाता है।

पर्यायदृष्टिमें अज्ञेय परिणमनकी दृष्टिसे जिसने एकान्त किया वह कहता है कि सदा रहने वाला आत्मा कोई चीज नहीं है, किन्तु क्षण–क्षणमें नवीन उसकी ज्योति उत्पन्न होती है और मिटती जाती है। जैसे दीपक जलता है, सरसोंका तेल डालो तो उसमें क्षण–क्षणमें एक बूंद जलती रहती है, तो नया–नया दीपक बन रहा कि नहीं ? पर वह एक धारामें नया–नया बन रहा है सो लोगोंको यह भ्रम होता है कि यह तो वही दीपक है जो आध घंटा पहिलेसे जल रहा है, पर दीपक नया–नया है क्योंकि नये–नये बूँदका नया–नया दीपक बन रहा है। इसी तरह क्षणिकवादी कहते हैं कि आत्मा तो नया–नया उत्पन्न होता रहता है मगर जिस घटमें, जिस देहमें, जिस धारामें नये–नये आत्मा बनते चले जा रहे हैं वैसे यह विवेक नहीं हो पाता कि यह नवीन–नवीन आत्मा है और यह भ्रम हो जाता कि वही आत्मा है। पर्याय एकान्त करने वाले इस तरह मन्तव्य रखते हैं।

स्याद्वादमें अर्थस्वरूपका दिग्दर्शन - स्याद्वाद द्रव्यदृष्टिसे नित्य और पर्याय-दृष्टिसे अनित्य कहता है। तो अब इसमें जो कोई समझायगा तो एक बात तो कुछ समझायगा या नित्य बतावेगा या अनित्य बतावेगा। नित्य और अनित्य दोनोंको एक साथ कहा कैसे जा सकता है ? तो जब पदार्थको नित्य धर्म बताया जा रहा हो उस समय अनित्य भी है ऐसा ज्ञान रखकर बताया जाय, समझा जाय तो सुनय है। जब अनित्य बताया जाय तो यह पदार्थ नित्य भी है ऐसा ज्ञान रखते हुए फिर अनित्य अंश का ज्ञान किया जाय, समझाया जाय तो वह सुनय है। तो सम्यग्ज्ञानमें पदार्थके समस्त अंश जितनेमें प्रयोजनीभूत है वे सब अंश ज्ञात होते हैं तब वह प्रमाण कहलाता है। यों स्याद्वाद सिद्धान्तमें समस्त दर्शन गर्भित हो जाते हैं।

ज्ञानका अनेकान्तसे प्रारम्भ और अनेकान्तमें परिसमाप्ति –स्याद्वादमें तो अनेकान्त प्रिय है, अनेकान्तका अर्थ है – अनेक अन्त, मायने धर्म वाला पदार्थ। जिसमें अनेक धर्म नजर आयें ऐसे पदार्थका ज्ञान किया जाता है। और, यह किसलिए किया जाता ? अनेकान्त बोलनेके लिए अर्थात् अ एक अन्त, जहाँ एक भी धर्म नहीं रहा ऐसा ज्ञान बनानेके लिए अनेकान्तका सहारा लिया जाता है। यहाँ दो स्थितियाँ बतायी हैं साधक अवस्थामें और निर्णयकी अवस्थामें। तो जब वस्तुके अनेक धर्मोंका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञान किया जा रहा है, वह पदार्थ अनित्य भी है, नित्य भी है, एक भी है अनेक भी हैं, सब कुछ सिद्ध किया जा रहा है पर यह सब सिद्ध करना और यह सब जानना किसलिए हो रहा है ! क्या ऐसा जानते रहनेके लिए ही, क्या ऐसा कहते रहनेके लिये ही ? नहीं। यह सब शुद्ध सम्यग्ज्ञानकी स्थिति पानेके लिए है जिस स्थितिमें ऐसा निर्विकल्पज्ञान बनता है जहाँ पदार्थका एक भी धर्म प्रतिभासमें नहीं आता, अर्थात् समग्र द्रव्य प्रतिभासमें निर्विकल्परूपसे आते है, वहाँ वह धर्म है, यह धर्म है इस प्रकारसे अलग-अलग ज्ञानमें नहीं आना, ऐसी निर्विकल्प स्थिति पानेके लिए पदार्थका सविस्तार ज्ञान किया जाता है।

ज्ञानविकासक्षेत्रमें क्रमिक अध्ययनकी प्रथम आवश्यकता—भैया ! ज्ञानक्षेत्रमें जो कोई ध्यान बढ़ाना चाहे तो प्रत्येक कार्योंकी विधियाँ हुआ करती हैं। उन विधियोंको प्रयोगमें लायें तो कार्य सिद्धि होती है। हम किसी भी ग्रन्थको जो प्रारम्भमें पढ़ने योग्य है और उसके बाद फिर जो पढ़ने योग्य है उसे इस क्रमसे अध्ययन करें और फिर जो उसके जानकार हैं उनसे उसका अध्ययन करें जिस प्रकरणको जाना उस पुस्तकका सहारा लिए बिना किसी भी रूपमें मौखिक बोला जाय फिर उसका बड़ा अध्ययन चले इस प्रकार क्रमिक अध्ययन होते रहनेसे यह अनुभव किया जा सकता कि इतने ज्ञानका हमने भण्डार बनाया और उससे फिर यह जिज्ञासा बनती है कि हम इसके आगेकी बात भी जानें। लेकिन ऐसा क्रमिक अध्ययन न करके कभी कुछ स्वाध्यायमें लिया, कभी कुछ ग्रन्थ स्वाध्यायको लिया, इस तरह चाहे अनेक ग्रन्थों का स्वाध्याय किया जाय पर वह क्रमिक न होनेके कारण उसका रस नहीं आ पाता कि हमने क्या समझा और कितना ज्ञान प्राप्त किया।

ज्ञानकी नितान्त उपादेयता—भैया ! ज्ञान ही तो एक सारभूत वस्तु है जगतमें और कुछ शान्ति सुखका साधन नहीं हैं। ज्ञान है तो अकेला ही यह अपने ज्ञानमें रमकर प्रसन्न रह सकता है ज्ञान है तो संसारकी अनेक परिस्थितियोंके बीच भी हम अपना विवेक बनाकर शान्त और प्रसन्न रह सकते हैं। उस ज्ञानके लिए हमें जितना भी अधिक हो सके उतना हर तरहसे यत्न करना चाहिए क्योंकि यह ज्ञान हमारेसे ऐसा संस्कार बनायेगा, क्षयोपशम बढ़ायेगा कि मरणके बाद भी हमारा यह संस्कार जायगा। यहाँके कोई भी पदार्थ मरनेके बाद साथ न जायेंगे, किन्तु मैं ज्ञान-स्वरूप हूँ ऐसी अपने आपकी भावना जितनी अधिक कर ली जाय और उससे जो संस्कार बनेगा वह तो केवल आपकी चीज आगे रहेगी और यहाँके जितने भी परिकर हैं उनमेंसे कुछ भी मेरे साथ नहीं रह सकता। अरे इस ज्ञानसंस्कारके साथ ही साथ जो भी वहाँ सम्यग्ज्ञान होगा वह मुझे सुखरूपसे बना सकेगा। ज्ञानका अर्जन एक सर्वोत्तम अर्जन है, इस बातका रंच भी सन्देह नहीं है। अगर अपने पास ज्ञान है तो आगेकी व्यवस्था सुखमय रहेगी, ज्ञानमय रहेगी, धर्मका वातावरण रहेगा और धर्मका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वातावरण करके रहें तो हम सर्व कर्मोंको दूर करके इस संसारसे छूट सकेंगे और निर्वाण प्राप्त कर सकेंगे।

सम्यग्ज्ञानमें समारोपका अभाव—सच्चा ज्ञान वह कहलाता है जो अपना और पदार्थोंका यथार्थ निर्णय करे। सच्चे ज्ञानमें संशय विपर्यय और अनध्यवसाय नहीं होता। अर्थात् न तो सम्यग्ज्ञानमें संशय बसा रहता है कि अमुक पदार्थ यों है अथवा यों हैं। जैसे रस्सीको देखकर यों सन्देह करते कि यह रस्सी है या सांप है संसयज्ञान है जहां संशय ज्ञान न हो वह यथार्थ ज्ञान कहलाता है। सम्यग्ज्ञानमें विपर्यय ज्ञान भी नहीं होता। जैसे पड़ी तो रस्सी है और जान रहे हैं सांप तो यह उल्टा ज्ञान हुआ। विपर्ययज्ञान भी सम्यग्ज्ञानमें नही है। और अनध्यवसाय ज्ञान कहते हैं अनिश्चयको। जहाँ कुछ भी निश्चयकी भावना तक भी नहीं है और कुछ झलक जरूर हुई है। जैसे चले जा रहे हे, पैरमें तिनका लग गया तो उसमें और कुछ ध्यान न होना। अरे लगा होगा कुछ। उसके निर्णयकी भावना तक भी नहीं हो, यथार्थ ज्ञानमें यह अनध्यवसाय भी नहीं होता। यह है सिद्धान्तकी बात।

स्मृतिप्रमोषका अभिप्राय करके विपर्ययज्ञानके स्वरूपखण्डनका प्रयास—एक दार्शनिक इस प्रकरणमें यह कह रहा है कि विपर्ययज्ञान कुछ चीज ही नहीं है फिर किसका निराकरण करनेके लिए तुम प्रमाणके स्वरूपमें व्यवसायात्मक शब्द दे रहे हो कि जो निर्णय रखे वह प्रमाण है और वह विपर्ययज्ञानका निषेध करता है। विपर्ययज्ञान मायने उल्टा ज्ञान। चीज तो है कुछ और जान रहें हैं कुछ। इसपर यह दार्शनिक कह रहा है कि उल्टा ज्ञान दुनियामें होता ही नहीं! जिसे तुम उल्टा ज्ञान कहते हो, रस्सीको साँप जान लिया तो यह कोई उल्टा ज्ञान नहीं है, किन्तु वहाँ सर्प का स्मरण हो रहा था कि वह स्मरण पूरे तौरसे नहीं बन सका और स्मरणका कुछ रूप होकर भी मैं खयाल कर रहा हूँ कि यह साँप है, वह साँप है इस प्रकार पूरा ध्यान नहीं हो पाता तो वह ज्ञान स्मृतिप्रमोष है, अधूरी स्मृति है, स्मृतिका अभाव है, गड़बड़ स्मृति है, विपर्ययज्ञान कुछ चीज नहीं है, ऐसा यह स्मृतिप्रदोषवादी अपना मन्तव्य रख रहा है।

स्मृतिप्रमोषमें प्रवृत्तिके हेतुके समाधानका प्रयास—स्मृतिप्रमोषकी एक शङ्काका समाधान भी दे रहे हैं कि वे कोई यदि यह कहे कि वह ज्ञान यदि केवल कल्पनाका ही है अधूरी कल्पना हो, गड़बड़ स्मृति हो, इतनेका ही नाम है तो फिर उस पदार्थमें प्रवृत्ति क्यों होती है? जैसे पड़ी तो थी सीप और जान लिया चाँदी तो इस ज्ञानको स्मृतिप्रमोषवादी कह रहे हैं कि यह स्मृतिका अभाव है तो फिर चाँदी ग्रहण करनेके लिए पुरुष भागता क्यों है? जब वहाँ कुछ ज्ञान ही नहीं हो रहा तो चाँदी उठानेके लिये दौड़ते क्यों हैं? तो इसके समाधानमें स्मृतिप्रमोषवादी कह रहे हैं कि उस स्मृतिप्रमोष ज्ञानमें जो प्रवृत्ति हुई है वह भेद ग्रहण न करनेसे हुई है अर्थात्

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सत्य पदार्थ क्या है ? और असत्य क्या है ? यों सत्य और असत्यमें उनके विवेक नहीं जगा, भेद नहीं मालूम हुआ, इस कारण वहाँ प्रवृत्ति होरही है, यह समाधान देरहे हैं।

भेदाग्रहणको प्रवृत्तिहेतु माननेपर आपत्ति—शङ्काकारके उक्त समाधान पर सैंद्धान्तिक लोग प्रश्न कर रहे हैं कि वहां जो सत्य और असत्यका भेद ग्रहणमें न आया तो यह भेदका अग्रहण क्या है ? इसका अर्थ क्या है ? क्या यह अर्थ है कि सत्य और असत्यमें एकत्वका ग्रहण हो गया ? या झूठको सचरूपसे या सचको झूठ रूपसे मान लिया है क्या यह अर्थ है ? यदि यह मतलब हो कि सत्य और असत्यमें एकत्वका ग्रहण हो गया तो इस हीका नाम तो उल्टा ज्ञान है, फिर मना क्यों करते हो कि विपर्ययज्ञान कोई चीज ही नहीं है ? यदि यह कहो कि सत्य और असत्यका जो भेद ग्रहण होगा आगे चलकर उसके पहिले अभाव है, यह प्रागभाव है भेदका अग्रहण तो यह केवल अभावमात्र रहा। किसी सद्भाव रूप तो माना नहीं, फिर केवल अभाव तो प्रवृत्तिका कारण नहीं होता। प्रवृत्ति और निवृत्ति ही तो प्रमाणके फल है। ऐसे ज्ञानका क्या स्वरूप जिस ज्ञानके कर लेनेपर न तो हितकी प्राप्तिकी बात सूझे और न अहितके त्यागकी बात ही है। वह ज्ञान कोई ज्ञान भी है क्या जिस ज्ञानके कर लेनेपर न तो कोई हितका लाभ हो और न किसी अहितका त्याग हो। तो तुम्हारे सत्य और असत्यके भेदका ग्रहण भी कुछ नहीं बनता।

भेदाग्रहणकी प्रवृत्तिहेतुताके समर्थनका प्रयास—स्मृतिप्रमोषवादी उत्तर दे रहे हैं कि इसमें शंका करना ठीक नहीं है क्योंकि मात्र भेदके अग्रहणसे प्रवृत्ति नहीं मानी किन्तु भेदके अग्रहणके साथ साथ जो वहाँ चांदीका ज्ञान होता है वह प्रवृत्तिका कारण है। अर्थात् सीप तो पड़ी है चाँदी जान रहे हैं तो यह चाँदीका ज्ञान होना और सीप और चाँदीमें अन्तर न समझना, इन दो बातोंसे फिर मनुष्य वहाँ चाँदी समझकर उस पदार्थको लेनेके लिये चलता रहता है, यो प्रवृत्ति भी बन जाती है। तब विपर्ययज्ञान कुछ चीज नहीं ऐसा स्मृति प्रमोषवादियोंने माना है। यदि सत्य स्मरण हो जाय तो वह भूल मिट जायेगी। यों स्मृतिप्रमोषवादी विपर्यय ज्ञानका निषेध कर रहे हैं।

स्मृतिप्रमोषका प्रतिविधान—अब आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि स्मृति प्रमोषका कोई स्वरूप ही नहीं बनता। जो तुमने कहा था कि यह बतलावो कि नेत्रमें यदि कोई दोष हो गया तो उन दोषोंके द्वारा नेत्रकी शक्तिका रुकावट किया जाता है या विनाश किया जाता है ? तो दोषके द्वारा न तो शक्तिकी रुकावटकी जाती और न विनाश किया जाता। आंखोंमें कोई कांच आदिक दोष हो गये तो कहीं आंखोंकी शक्ति दबा नहीं दी जाती। आंखोंसे फिर भी देखते हैं और न आंखोंकी शक्तिका विनाश किया जाता है परन्तु दोषके उत्पन्न होनेपर इन नेत्र आदिक इन्द्रियके द्वारा ऐसा ज्ञान कर लिया जाता कि है तो कुछ और समझ लिया जाता कुछ। जैसे किसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नेत्रदोषके कारण एक चन्द्रके बजाय कभी दो चन्द्र दिखने लगते हैं तो दो चन्द्रोंका ज्ञान करना उल्टा ज्ञान है, झूठा ज्ञान है, यथार्थ ज्ञान नहीं है। वहाँ जो दोष होता है उस दोषने आँखकी शक्ति मिटायी नही है किन्तु दोष होनेपर कुछसे कुछ ज्ञान होने लगा है। यह दोषमें सामर्थ्य है कि उस दोषके होनेपर जो पदार्थ विद्यमान भी नहीं है उस अर्थमें भी ज्ञान उत्पन्न कर देते हैं ये नेत्रादिक।

विपर्ययज्ञानमें असत्ख्यातित्वके प्रसङ्गका अभाव—जैसे जिसे नेत्रमें कोई रोग हो जाता कि चीज चमकती तो है कम और थोड़ा ज्यादा चमक दिखती है तो वह यह विपरीत ज्ञानका साधन ही तो हुआ। थी तो वहाँ सीप और जानने लगा चाँदी तो नेत्रोंमें जो दोष आये हैं उन दोषोंने नहीं नेत्रोंकी शक्ति रोकी और न नेत्रकी शक्तिका घात किया, किन्तु उन दोषोंके कारण इस प्रकारका ज्ञान हो गया कि चीज तो थी अन्य कुछ और उसका लक्ष्य करके जो चीज न थी उसका ज्ञान करने लगा। इसमें असत्ख्याति भी नहीं होती। एक दर्शन यह कह रहा है कि विपर्ययज्ञान कुछ चीज नहीं किन्तु जो पदार्थ है ही नहीं असत् है उसकी जानकारी बन गई। तो यहाँ यह भी नहीं है कि सर्वथा असत् तत्त्व हो और उसकी जानकारी बन जाय। जो चीज सर्वथा असत् है, है ही नहीं, त्रिकाल भी उसकी कभी जानकारी बनती नही, जितनी भी जानकारियां बनती हैं वे पदार्थ हैं तो बनती हैं, जैसे मान लो कि सीपमें इस समय सीपमें हमने चाँदीका ज्ञान कर लिया, पर चाँदी कहीं न कहीं है तो सही। जिसका सत्त्व भी नहीं कहीं। ऐसे पदार्थकी कल्पना भी कौन करता हैं।

असत्ख्यातिकी असंभवता– यहाँ असत्ख्याति भी नहीं है क्योंकि यहाँ सदृशता भी कारण है। सीपमें चाँदी जान लिया इस ज्ञानके करनेमें सादृश्य भी कारण है। असत्ख्यातिमें तो सादृश्य कारण नहीं होता। जो चीज बिल्कुल नहीं है उसकी जानकारी प्रथम तो होती ही नहीं है और फिर जबरदस्ती मान भी लें तो उसमें सादृश्यके लिए कोई बात नहीं मिलती। असत्ख्याति सादृश्यपूर्वक नहीं होती। जैसे आकाशका फूल। तो आकाशका भी कोई फूल होता है क्या ? फूल तो पेड़का होता है। तो आकाशके फूलकी सदृशता क्या कर सकें, कोई चीज ही नहीं है। और, कोई आकाशमें फूलकी कल्पना भी करे तो कमसे कम इतनी बात तो है कि आकाश भी कुछ होता है और फूल भी कहीं कुछ होता है। भले ही आकाशमें फूल जोड़ दे मगर यह चीज तो कहीं न कहीं है। तब हमें फूलकी कल्पना जगती है। जो चीज सर्वथा असत् है उसके सम्बन्धमें कल्पना तक कहां उठती है। यहाँ जो चाँदीका ज्ञान किया जा रहा है सीपमें तो वहाँ जो रजतका आकार मालूम पड़ा है वह सद्भूत है। कहीं न कहीं तो चाँदी होती है फिर उसका ज्ञान होता रहता है।

पुरोवर्ती अर्थमें रजताकारका प्रतिभास—भैया ! ऐसा भी नहीं है कि

http://sahjanandvarnishastra.org/

पड़ी तो है सीप, जान रहे हैं चाँदी तो किसी अर्थका आकार न आया हो ज्ञानमें किन्तु ज्ञानका ही आकार आया हो ऐसी आत्मख्याति भी नहीं आती है, क्योंकि वहाँ संस्कार भी तो कारण है। संस्कारकी सहायता लेकर फिर दोष होनेके कारण पहिले जिसका कभी ज्ञान किया था उस रजतका ही आकार वर्तमानमें पड़े हुए सामने पदार्थमें प्रतिभासमें आ रहा है, याने पड़ी हो सीप जान रहे चाँदी तो यहाँ हो क्या गया? यहाँ हुआ क्या कि नेत्रोंमें कुछ दोष था, कम दिखायी दिया चमकीला दिखाई दिया तो उन दोषोंके कारण व भीतर पड़ा था संस्कार, चाँदीके प्रति रुचि और चाँदीको सीप समझ रखा था सो उस सामने पड़े हुए पदार्थमें चाँदीका आकार झलकने लगता है इसीक नाम है विपर्ययज्ञान।

सांव्यवहारिक प्रत्यक्षमें विपर्यय प्रतिभासकी संभवता—ऐसा ज्ञान करनेमें यह भी दोष नहीं दिया जा सकता तो फिर ऐसा बोध होना चाहिए कि यह चाँदी है, यह चाँदी है यह क्यों ज्ञान होता है। अरे सामने पड़ी चीज है उसको लक्ष्य करके हम जान रहे हैं इस कारण यह ज्ञान होता है कि यह चांदी है। विपर्ययज्ञान तो सबके अनुभवमें आ रहा है। उल्टा ज्ञान कुछ होता कि नहीं होता? अब है तो शरीर और जान रहे हैं कि यह मैं जीव हूँ यह तो उल्टा ज्ञान हुआ। लौकिक अनेक मामलों में उल्टे ज्ञानकी प्रतीति जीवोंको होती है, कोई न कोई मिथ्या ज्ञान है। हाँ मिथ्याज्ञानका निवारण तो करें मिथ्याज्ञानसे हित नहीं है, झूठ ज्ञानसे शल्य ही होता है। मिथ्याज्ञान दूर तो करना चाहिए और सम्यग्ज्ञान उत्पन्न करना चाहिए, पर मिथ्याज्ञानका स्वरूप तो है कुछ। ऐसा तो नहीं है कि मिथ्याज्ञान कुछ होता नहीं। कोई पदार्थ है तो दुःखका कारण और भ्रम हो गया कि यह सुखका कारण है तो यह भ्रम बुरी चीज है। भ्रम मिटाना चाहिए। तो भ्रम भी कुछ चीज है तभी तो उसे मिटाने की बात कही जाती है और मिटाया जाता है। भला आकाशमें कौन लाठी मारता है? कभी किसीको आकाशमें लाठी मारते देखा क्या? तो ऐसे ही भ्रम कुछ चीज न हो तो मिटानेका क्या प्रयत्न किया जाय? यहाँ आकाश है तो सही मगर लाठी मारने के लायक नहीं है। तो भ्रम कोई वस्तु है फिर वह है अहितकारी अतएव भ्रमका भी नाश करना चाहिए।

भ्रमका प्रभाव—यह सारा जगत भ्रम-भ्रममें ही तो बरबाद हो रहा है। और, है क्या चीज? बतलावो इस आत्माका धन वैभव भी कुछ है क्या? जुदा है। शरीरसे भी निराला प्रभुस्वरूप यह चेतन शरीरके भीतर बँधा पड़ा है। जैसे कभी कटघरेमें शेर वन्द हो जाय तो वह शेर पराधीन हो गया। तो उस कटघरेमें पड़ा हुआ सिंह परतंत्र है ऐसे ही शरीर कटघरेमें पड़ा हुआ यह जीव परतंत्र है। है सबसे न्यारा अत्यन्त भिन्न, ये धन वैभव, मकान, इज्जत पोजीशन कहीं कुछ नहीं हैं लेकिन ये मोही प्राणी मान रहे हैं कि मेरा यह सारा ठाठ है। मैं इतना धनी हूँ, एसी पोजीशन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का हूँ तो इसी भ्रम भ्रममें तो यह जीव मरा जा रहा है, अनेक पापकर्मोंका बन्ध हो रहा है, उनके फलमें नाना शरीर धारण करने पड़ते हैं। तो इतनी विडम्बना इस जीवको जो मिल रही है वह सब भ्रम ज्ञानके कारण मिल रही है। तो दृश्य चीज प्रत्यक्ष तो आयी कि यह है कुछ, पर उसके बारेमें था कुछ जान कुछ लिया, उल्टा ज्ञान बन गया, इसीको विपर्ययज्ञान कहते हैं। तो 'शुक्तिकायां इदं रजत' के दृष्टान्तमें भी समझिये कि वहाँ ऐसा ही ज्ञान होता कि यह चाँदी है।

पुरोवर्ती अर्थमें विपर्ययज्ञानका रूप – स्मृतिप्रमोष वालों के यहां भी तो ऐसा ही ज्ञान हो रहा है कि यह चाँदी है। जिसे तुम स्मृतिप्रमोषके नामसे कहते हो कि स्मरण कुछ कुछ आ रहा था मगर गड़बड़ हो गया अथवा मिट गया बस यही स्मृतिप्रमोष है। उसमें भी तो यह चाँदी है ऐसा ज्ञान हुआ। जिस प्रकार स्मृतिप्रमोष के सिद्धान्तमें यह रजत है यह ज्ञान हो गया, इसी प्रकार इस सिद्धान्तमें भी चूँकि दोष नेत्रोंमें लगा था सो 'यह रजत इन दोनोंमें सामानाधिकरण बन गया, एकतामें आ गया तो सामने पड़ी हुई चीजमें रजतका वर्तमानमें आभास हो जाता है। जैसे नेत्रपर कोई हरा चश्मा लगा ले तो क्या सामनेकी चीज न नजर आयगी ? आयगी, पर है तो वह सफेद चीज और दिख रही है हरी चीज तो यह तो एक ऊपरी दोषकी चीज है। यों ही नेत्रमें कोई दोष हो जाय, विकार जग जाय तो उससे विपरीतज्ञान होता है। चीज है तो और भांति, जानने लगे और भांति यही तो विपर्ययज्ञान है।

भैया ! इन्द्रियज ज्ञान ही विपर्ययज्ञान नहीं होता, श्रुतज्ञान भी विपर्ययज्ञान होता है। शास्त्रकी किसी लाइनका अर्थ है तो कुछ, लगा रहे हैं कुछ, यह विपर्ययज्ञान है। अवधिज्ञान भी विपर्ययज्ञान होता है। है तो किसी कामकी चीज और मान रहे हैं इल्टी चीज !

विपर्ययज्ञानमें कुबुद्धिकी प्रगति –आदिनाथ भगवानके चरित्रमें उनके बहुत पूर्वभवोंमें संबोधनके प्रकरणमें एक कथा आयी है कि राजा अरविन्द था। उसने बहुत बड़ा आतङ्क कर रखा था जो मनमें आये उसे हठसे पूर्ण करे। एकबार अरविंद राजाको बहुत तेज बुखार हुआ ज्वरकी वेदना न सही जाय। तो जहाँ वह पड़ा था उस भींटपर दो छिपकली लड़ने लगी और लड़नेमें एक छिपकलीकी पूंछ टूट गयी, उससे दो एक बूंद खून उस राजाके शरीरपर पड़ गया। शरीर तो बुखारसे गरम था, उस बूंदके गिरनेपर उसे कुछ शीतलता मालूम पड़ी, तो उस राजाने अपने पुत्रों को हुक्म दिया कि तुम एक खूनकी बावड़ी बनाओ, उसमें खून भर दो, हम उसमें नहाकर अपने शरीरकी वेदना मेटेंगे। लड़के लोग इस बातको सुनकर बहुत घबड़ाये, सोचा कि कहाँसे इतना खून लायें कि बावड़ी भरी जाय। लेकिन राजाने हुक्म दिया कि तुम्हें खून लाना ही पड़ेगा नहीं तो तुम्हें फांसी दी जायगी। आखिर वे दोनों लड़के जंगलकी ओर चल पड़े।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विपर्ययज्ञानमें अहितकी ही सूझ राजपुत जब एक जङ्गलमें पहुंचे तो वहाँ एक मुनि महाराज मिले। मुनि महाराजने उनसे पूछा कि तुम कहाँ जा रहे हो? तो उन्होंने सारा हाल कह सुनाया। मुनि बोला कि वह राजा विपर्ययज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि है, उसे सब उल्टा ही सूझता है, उसके कहनेसे तुम क्यों इतने पाप करो? तो लड़के बोले कि हमारा पिता तो अवधिज्ञानी भी है, आगे पीछेकी बात भी बता देता है, आप उसे अज्ञानी क्यों कह रहे हैं? मुनिराज बोले कि उसको अवधिज्ञान तो है पर खोंटा अवधिज्ञान है, और इसकी परीक्षा करना हो तो तुम जावो और उससे पूछो कि किस जङ्गलमें जायें तो खूब जानवर मिलेंगे। यद्यपि वह बतायगा इसी जङ्गलको लेकिन और और भी उससे पूछते रहना वह हिरण, खरगोश आदि सभी जानवर तो बता देगा पर यह नहीं बता सकता कि उसमें मुनि महाराज भी बैठे हैं। वे पुत्र गए राजाके पास और पूछा कि हम किस जंगलमें जायें? उसने वही जंगल बता दिया। फिर पूछा कि वहाँ क्या क्या है? तो बोला– हिरण हैं, खरगोश हैं, और और भी जानवर बताये, पर यह नहीं बता सका वह राजा कि वहाँ कोई तपस्वी साधु भी विराजे हैं।

विपर्ययज्ञानीकी दुर्गति– तब पुत्रोंने यही निर्णय किया कि यह राजा, यह हमारा पिता मिथ्यादृष्टि है, पापी है, अज्ञानी है अतएव पाप कराकर यह हम लोगोंको अनर्थके गड्ढेमें गिरा रहा है। मगर राजाको डर तो था। बहुत सा खून लानेका हुक्म दिया है। तो उन पुत्रोंने क्या किया कि लाखका रङ्ग भी खूनकी तरह होता है सो बावड़ीमें लाखका रङ्ग भर दिया। जब राजा उस बावड़ीमें नहाने गया तो उसे किसी तरहसे मालूम होगया कि यह खून नहीं है तो उसे उन पुत्रोंपर क्रोध आया। ओह, यह तो कोरा लाखका रङ्ग है, उन्होंने मेरे साथ छल किया है, फिर झट कटारी लेकर उन पुत्रोंको मारनेके यिए दौड़ा। वे दोनो लड़के भगे जा रहे थे। राजा उनका पीछा कर रहा था। आखिर हुआ क्या कि राजाके पैरमें एक ऐसी ठोकर लगी कि गिर पड़ा और उसकी ही कटारी उसके पेटमें घुस गयी। उस राजा का वहीं मरण हो गया और मरकर नरक गया।

विपर्ययज्ञानकी अहितकारिता विपर्ययज्ञानकी बात कही जा रही है कि आंखोंका ही विपर्ययज्ञान नहीं होता, जो जो भी जान रहे हैं श्रुत वगैरहसे मिथ्यात्वमें उनसे भी विपर्ययज्ञान होता है। तत्त्व तो कुछ है और चिन्तवन किया जा रहा है और कुछ तो वह विपर्ययज्ञान है। यद्यपि अवधिज्ञानसे जान तो रहे हैं भूत भविष्यकी बातें मगर उसे हितरूपसे नहीं जान सकते कि इसमें हित क्या है और अहित क्या है? चीज तो है हितरूप और समझ रहे हैं अहितरूप, अथवा चीज तो है अहितरूप और समझ रहे हैं हितरूप। तो यही तो विपर्ययज्ञान है। यों विपर्ययज्ञानमें ज्ञान उल्टा उल्टा चलता है। विपर्ययज्ञान जीवोंके होता है उसका निषेध नहीं किया जा सकता। यों विपर्ययज्ञानके स्वरूपका समर्थन किया जा रहा है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रतिभातसंसर्गके विकल्पोंकी व्यर्थता—विपर्ययज्ञानको असिद्ध करने वाले इस दार्शनिकने यह आपत्ति उठाई थी कि जैसे पड़ी तो है सीप और जान रहे हैं कि यह चाँदी है तो इस ज्ञानमें उस पदार्थमें चाँदीका संसर्ग है या नहीं ? यदि चांदीका संसर्ग है और फिर चाँदीका ज्ञान हो रहा तो झूठा ज्ञान कैसे है ? वह तो सम्यग्ज्ञान हुआ और यदि उस पदार्थमें चाँदीका संसर्ग है नहीं और फिर भी ज्ञान हो रहा है तो इससे तो ज्ञानका कोई रूप ही न आ सकेगा, कुछ भी नहीं है, और प्रतिभास हो जाय तो ज्ञानके सम्यक् मिथ्याका निर्णय क्या ? आचार्यदेव इसपर उत्तर देते हैं कि यह विकल्पदोष विपर्ययज्ञानमें सम्भव नहीं है क्योंकि यहाँ तो सामने पड़े हुए पदार्थमें कुछ दोषके कारण दूसरे पदार्थका प्रतिभास हो रहा है। विपर्ययज्ञानमें ऐसा होता ही है, सामनेकी कोई चीज है, दिख तो रही है पर जान रहे हैं और कुछ, इसहीका नाम तो विपर्ययज्ञान है।

स्मृतिप्रमोषमें प्रवृत्तिके कारणोंके समाधानकी अयुक्तता—स्मृतिप्रमोष में प्रवृत्ति क्यों होती, इसपर जो स्मृतिप्रमोषनादीका उत्तर था कि सीपको चाँदी जान लेनेपर अर्थात् वहाँ अधूरी स्मृति होनेपर या स्मृतिके अभाव होनेपर जो मनुष्य उसे उठानेके लिए जाता है सो सत्य और असत्यका विवेक नहीं रहा इस कारणसे वह उठाने जाता है, यह भी कहना ठीक नहीं। प्रवृत्ति जो होती है वह अभेदज्ञानसे होती है उसमें यह बात नहीं है कि सत्य और असत्यका विवेक नहीं रहा इसलिए वह जा रहा है। किन्तु एक ज्ञान हुआ और ज्ञान ऐसा हुआ कि जिससे यह समझमें आया कि यह हमारे हितकी चीज है, हमें प्रवृत्ति कर लेना चाहिए, बस इस ज्ञानके कारण वह उठानेकी प्रवृत्ति करता है जैसे सम्यग्ज्ञानमें भी तो प्रवृत्ति होती है, घड़ेकी जरूरत है, पानी पीना है, लोटाकी आवश्यकता है तो लोटा देखा और ज्ञान कर लिया कि यह लोटा है फिर उसे उठा लेते हैं। तो यह हमारे हितकी बात है यह समझमें आया तो प्रवृत्ति करते हैं। यह बात अलग है कि कभी झूठे ज्ञानमें भी हमें हितकी बात मालूम होती है सो हम वहाँ भी प्रवृत्ति करते हैं।

स्मृतिप्रमोषमें भेदके अग्रहणकी असिद्धि – यह भी तो सिद्ध नहीं हो सकता कि सत्य और असत्यमें विवेकके भेदकी अज्ञानकारी है, अग्रहण है, क्योंकि यदि यह मालूम पड़ जाय किसी भी उल्टे ज्ञानमें कि यहाँ सत्य और असत्यका अभेद हो रहा है, विवेक नहीं हो पा रहा है तो वह झूठ क्या ? और न मालूम पड़े तो विवेक की अख्याति क्या ? यह जाना कि यह चाँदी है, थी सीप, तो उसमें जो यह आपत्ति देते हो कि यह चाँदी है इसमें यह इतना अंश तो है प्रत्यक्षका और चाँदी है इतना अंश है स्मरणका। यों दो ज्ञान मिले इसका नाम उल्टा ज्ञान है, अन्य कुछ नहीं, यो वे कह रहे हैं और जैन सिद्धान्त यह कहता है कि दो ज्ञानोंके मिलनेसे उल्टा ज्ञान नहीं बनता किन्तु सामनेकी चीजको, हमने प्रत्यक्षको ही तो जाना पर दोषोंके कारण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वह ज्ञान और किस्मका बन गया। था चीज थी कुछ ज्ञान करने लगे कुछ तो इकहरा ही ज्ञान है वहां विपर्यय ज्ञानमें। किन्तु, ये स्मृतिप्रमोष वाले यह कह रहे है कि यह चाँदी है ऐसा जो ज्ञान हुआ इसमें "यह" इतना अंश तो प्रत्यक्षका है। प्रत्यक्षसे समझा यह फिर ख्याल आयी चाँदी तो ख्यालका और प्रत्यक्षका वहाँ जोड़ हो रहा है। यह है वहांकी स्थिति विपर्ययज्ञान अलगसे कुछ नहीं है, यों मान लोगे तो कोई भी सही इकहरा ज्ञान बन नहीं सकता। जहाँ हम सच्चे भी ज्ञान कर रहे हों जैसे यह कमण्डल है तो यहां भी हम मोटी तुम्हारी जैसी बात लगा देंगे कि इसमें यह तो है प्रत्यक्षका अंश और कमण्डल है स्मरणका अंश फिर कोई भी ज्ञान शुद्ध नहीं हो सकते। सब मिलवा ज्ञान कहलायेंगे।

इदं से किंप्रतिभास प्रष्टव्य—स्मृतिप्रमोषवादियोंसे स्याद्वादी कह रहे हैं कि शायद यह कहो कि यह कमण्डल है, इसमें तो कमण्डल ही है और कमण्डलको ही जाना इस कारण ज्ञान भेद नहीं माना गया है किन्तु उल्टे ज्ञावमें थी सीप और जान रहे चांदी, इस कारण भेद माना जायगा। सत् पदार्थके ग्रहण करने पर दो ज्ञान नहीं माने जायेंगे कि यह कमण्डल है, इसमें यह तो प्रत्यक्ष हुआ और कमण्डल स्मरण हुआ यह ज्ञान भेद तो विपर्ययज्ञानमें ही सम्भव है। यदि एसा कहते हो तो बात दोनों जगह एक है। यह कमण्डल रखा है और फिर जान रहे कि यह कमण्डल है तो यहां तुम ज्ञान भेद नहीं मानते ना, ऐसे ही वहां चाँदी तो है नहीं; है तो सीप, पर जान रहे चांदी सो वहां भी दो ज्ञान तो प्रतीतिमें नहीं आते। वहां ऐसा तो कोई जीव नहीं सोचता है कि यह रजतमय ख्याल करे, किसी जगह रखी हो चीज फिर उसे जोड़े ऐसा तो कोई नहीं मानता किन्तु सीधे सामने वाले पदार्थमें यों दृढ़तासे मान रहे हैं कि यह चांदी है वहां भी ज्ञान भेद नहीं है।

साधनगुण दोषसे ज्ञानकी समीचीनावमीचनताकी सिद्धि—बात यों है कि जैसे इंद्रियमें कोई दोष न हो गुणवान इन्द्रिय हो तो उनसे इन्द्रियोंसे हम सद्भूत पदार्थमें एक ज्ञान उत्पन्न करते हैं इसी प्रकार इन्द्रियमें यदि दोष हो, आंखोंमें कोई खराबी हो तो उन सदोष इन्द्रियोंके द्वारा सदृशताकी वजहसे हम असत् पदार्थोंमें भी एक ज्ञान उत्पन्न कर लेते हैं। यह तो गुण दोषकी बात है। हमारी इन्द्रिय साफ हैं तो हमें सही रूपमें जाननेमें आयगा और इन्द्रियमें दोष है तो कुछका कुछ समझमें आयगा। जहां और कुछ जाननेमें आया वह है विपर्ययज्ञान और जो सत् पदार्थ है वही जाननेमें आया वह हो गया सम्यग्ज्ञान।

प्रत्यक्ष और स्मरणमें भेदाग्रहणकी असिद्धि—यह स्मृति प्रमोष एक प्रभाकर नामके दार्शनिक मान रहे हैं। उनके यहां भेदका अग्रहण ही सिद्ध नहीं होता यों कह रहे हैं कि यह चांदी है इस प्रकारका जो ज्ञान हुआ उसमें यह तो प्रत्यक्ष है और है चांदी है ऐसा स्मरण हुआ, ये दो ज्ञान हुए तो सही तुम्हारे कहनेके अनुसार किन्तु वह स्वरूपमें आविर्भावसे ही तो बनेगा। यदि ये दो चीजें हैं यह चौकी है। यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कमण्डल है तो कमण्डलका स्वरूप कमण्डलमें होगा। चौकीका स्वरूप चौकीमें। यह बिल्कुल प्रकट न्यारा-न्यारा स्वरूप समझमें आये तब तो यह कहेंगे कि ये दो चीजें हैं। एक दूसरेका जहां भेद समझमें आ गया वही तो स्वरूपका आविर्भाव कहा जायगा। कमण्डलका जितना स्वरूप है। जितना पिण्ड है उतना कमण्डलमें ज्ञात हुआ और चौकीका जितना स्वरूप है वह सब चौकीमें ज्ञात हुआ तब तो यह कह सकेंगे कि यहां ये दो पदार्थ हैं और हमको ये दो ज्ञान उत्पन्न हुए हैं तो यह चांदी है इसमें जो दो ज्ञान बना रहे हो ये जब दोनों बिल्कुल भिन्न भिन्न साबित हों जायें तभी तो कह सकेंगे और यदि यों बनेंगे तो प्रथक् प्रथक् दो ज्ञान हो गये। तो यों भी स्मृति प्रमोष सिद्ध नहीं होता स्मृति प्रमोषके पक्षमें यह जो कहा था कि यह चांदी है इसमें जो सत्य असत्यका विवेक रहा, सही पदार्थ क्या है और झूठा क्या है इतना बोध नहीं रहा इसका नाम विवेकाख्यति कहा तो तुम्हारे मतमें भेदका अग्रहण नहीं बनता उससे पहिलेकी स्थितिका नाम विवेकाख्याति है। और, ऐसा अभाव तुम्हारे मतमें नहीं माना गया।

विपर्ययज्ञान और सम्यग्ज्ञानकी अवस्था—भैया! सीधी सी बात है सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान। जो पदार्थ जैसा है वैसा ही उसे मान लिया यह तो सम्यग्ज्ञान है और पदार्थको जान तो रहे हैं पर और रूपसे जान रहे हैं इसका नाम मिथ्याज्ञान है। जहां मिथ्या ज्ञान नहीं होता वह ज्ञान प्रमाण है। जहां विपर्ययज्ञान है वह ज्ञान अप्रमाण है। यों विपर्ययज्ञानका भी स्वरूप कुछ है और सम्यग्ज्ञानका भी स्वरूप कुछ है। दोनों हों तो दोनों बनते हैं। कोई कहे कि दुनियामें विपर्ययज्ञान कुछ नहीं होता तो सम्यग्ज्ञान भी कुछ न रहेगा। उल्टा ज्ञान तब तो सम्यग्ज्ञानका स्वरूप बने। और सम्यग्ज्ञान हो तो उल्टे ज्ञानका स्वरूप बने। सच न हो दुनियामें तो झूठ किसका नाम है। और झूठ न हो दुनियामें तो सच किसका नाम है। ये दोनोंका जोड़ा चलता है— जैसे सम्यक्त्व और मिथ्यात्व। कोई कहे कि मिथ्यात्व कोई चीज ही नहीं तो हम कहेंगे कि सम्यक्त्व भी कोई चीज नहीं है। कोई कहे कि सम्यक्त्व कोई चीज नहीं है तो हम यह कहेंगे कि मिथ्यात्व भी कोई चीज नहीं है। तो विपर्ययज्ञान कुछ होता है और वह प्रमाण नहीं है ऐसा बतलानेके लिये प्रमाणके स्वरूपमें यह कहा गया है कि जो स्व और अपूर्व अर्थका व्यवसायात्मक ज्ञान हो वह प्रमाण होता है।

स्मृतिप्रमोषके विकल्पोंमें स्मृतिके अभावरूप विकल्पका निरास—देखिये! स्मृतिप्रमोषका नाम ही सिद्ध नहीं है, क्योंकि स्मृतिका प्रमोष इसका अर्थ क्या? ये दार्शनिक यहाँ यह मानते हैं कि हमें किसी वस्तुमें उल्टा ज्ञान हुआ तो वह यही है कि हम कुछ ख्याल कर रहे थे और वह ख्याल गड़बड़ हो गया वही स्मृति-प्रमोष है। तो स्मृतिप्रमोष क्या स्मृतिका अभाव है या अन्य पदार्थका अवभास है या

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उल्टे आकारका जानन है या अतीत कालका वर्तमानरूपसे ग्रहण है या अनुभवके साथ पानी और दूधकी तरह उसकी अविवेकसे उत्पत्ति है ? क्या अर्थ है स्मृतिप्रमोषका ? पड़ी थी सीप, जान गए चाँदी तो इसमें यह अन्यमती कह रहा है कि चाँदीका ख्याल आ रहा है और ख्याल आते-आते वह कुछ गड़बड़ हो गयी वही बात हुई, और विपर्ययज्ञान कोई चीज नहीं है तो वहाँ स्मृतिका अन्यन्ताभाव कहते हो तो स्मरणके अभावमें पहिले देखी हुयी चाँदीकी प्रतीति भी नहीं हो सकती और स्मरणके अभाव का नाम स्मृतिप्रमोष है, विपर्ययज्ञान हैं। एक आदमी बेहोश पड़ा है या सोया हुआ है और एक पुरुष उल्टा ज्ञान कर रहा है तो उस बेहोश पड़े हुए पुरुषमें भी स्मृतिप्रमोष आ जाना चाहिए क्योंकि स्मृतिका अभाव तुमने विपर्ययज्ञानमें भी माना है। और, जो थोड़ी बात है उसमें भी स्मरणका अभाव है। तो उसमें कुछ फर्क है या नहीं ? एक आदमी सो रहा है, और एक जगता खड़ा है तो खड़ा हुआ व्यक्ति रस्सीको सांप जान रहा है तो इन दोनों व्यक्तियोंके ज्ञानमें कोई अन्तर है या नहीं ? स्मरणका अभाव तो उस सोये हुएके है और स्मरणके अभावसे ही तुम रस्सीको सांपका ज्ञान मान रहे उस जगने वालेके भी, तो जब स्मरणका अभाव दोनोंमें बराबर है तो ये जुदे-जुदे प्रभाव प्रभाव क्यों हो रहे हैं उन पुरुषोंमें ? स्मृतिप्रमोषका नाम विपर्ययज्ञान नहीं है किन्तु सामने जो नजरमें आया पदार्थ उसको हमने और पदार्थरूपसे जान लिया इसका नाम उल्टा ज्ञान है।

स्मृतिके अभावरूप स्मृतिप्रमोषमें सुप्तजागृतका भेद सिद्ध करनेका व्यर्थ प्रयास—शायद स्मृतिप्रमोष वाले यह कहें कि सोये हुए मनुष्यमें और उस जगने वाले मनुष्यके ज्ञानमें यह अन्तर है कि जानने वालेको तो 'इदम्' यह बोध हो रहा है कि 'यह है' और सोने वालेको 'यह' ऐसा बोध ही नहीं है, इससे अलग-अलग प्रभाव है तो पूछते हैं कि 'यह' इसमें आया क्या, प्रतिभासमें आया क्या ? यदि उस जगने वाले पुरुषको यह है, यह सांप है, ऐसा प्रतिभासमें यदि रस्सी ही आई तो रस्सी रस्सीरूपसे ग्रहणमें आयी है या सर्पके सन्निधानके रूपसे ग्रहणमें आयी है। यदि उस जानने वालेके ज्ञानमें रस्सी रस्सीके रूपसे ज्ञानमें आये तो वह स्मृतिप्रमोष नहीं रहा, सम्यग्ज्ञान ही रहा क्योंकि रस्सीं पड़ी थी और रस्सी ही जान लें तो सर्पका स्मरण उसे कैसे हो ? जिससे कि स्मृतिप्रमोष बन जाय। कभी ऐसा तो नहीं होता कि हम कमण्डलका तो ग्रहण कर रहे और हवाईजहाजका स्मरण करने लगें। जिस चीजका हम ग्रहण करेंगे उसका ही तो स्मरण होगा। विपर्ययज्ञानमें जैसे सीपको चाँदी जाना तो सीपका ग्रहण किया तो चाँदीका क्यों स्मरण हो बैठेगा ? यदि यह कहो कि सीप और चाँदी एक समान हैं अतएव प्रतिभासमें तो सीप ही आ रहा, पर चाँदीका स्मरण हो गया। जैसे रस्सी और सर्प एक समान हैं तो प्रतिभासमें तो रस्सी ही आ रही मगर सांपका स्मरण हो गया ऐसा यदि कहोगे तो यह बात युक्त नहीं है। यह सदृशता अकिञ्चित्कर है क्योंकि वहाँ तुम्हें जो रस्सी ज्ञात हो रही है वह रस्सीके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वरूपसे ज्ञात हो रही है तो सदृश वस्तुका स्मरण कैसे हो जाय। पूरा पदार्थ हमारे ज्ञानमें आया और किसी अन्य पदार्थका स्मरण बनने लगे यह तो नहीं होता है।

विपर्ययज्ञानकी स्वरूपसिद्धता—विपर्यज्ञान वास्तवमें कुछ चीज है। जैसे शरीरको जान लिया कि यह मैं जीव हूं तो यहाँ यह बात नहीं है कि शरीरमें हम आत्माका ख्याल कर रहें हों और वह ख्याल विकल्प किया यह स्मृतिप्रमोष हुआ किंतु जैसे आत्माका अनुभव रखने वाले योगीश्वर आत्माको लक्ष्यमें लेकर यह मैं आत्मा हूं ऐसी दृढ़तापूर्वक ज्ञान करते हैं इसी तरह अज्ञानी पुरुष भी इस शरीरको लक्ष्यमें लेकर यह मैं आत्मा हूँ ऐसा दृढ़ता पूर्वक ज्ञान करता है, इसमें स्मरणकी कोई बात नहीं है, उल्टा ज्ञान भी एक साक्षात् ज्ञान है। सच्चा ज्ञान भी साक्षात् ज्ञान है। यह देख रहे हो उसमें कुछ ख्याल कर रहे हो, ऐसी बात नहीं किन्तु सामने आये हुए पदार्थमें हम जो भी ज्ञान कर रहे है, हम यदि वैसा ही ज्ञान करते रहें जैसा कि पदार्थ है तो वह हो जाता है सम्यग्ज्ञान और अन्य पदार्थोंके रूपसे हम ज्ञान करते हैं तो वह हो जाता मिथ्याज्ञान। मिथ्याज्ञान एक ज्ञान है. वह जहाँ न हो वह ज्ञान सच्चा कहलाता है।

स्मृतिप्रमोषमें बाधकप्रत्ययकी असिद्धि—और, देखिये भैया! जब कभी हम कोई झूठ जान रहे हों तो थोड़ी देर बाद हम उसे यह भी समझ सकते हैं कि जो मैं यह जान रहा था वह झूठ था। तत्त्व तो यह है। जैसे मिथ्यादृष्टि जीव शरीरको आत्मा मान रहा है, धन वैभवको हितकारी मान रहा है तो जग जानेपर अर्थात् मोहनिद्रा टूटनेपर, विवेक सूर्यका उदय होनेपर वह जान लेता है कि मैं जो जान रहा था सब झूठ है, अज्ञान है। जैसे कोई सोया हुआ पुरुष सोयी हुई हालतमें झूठ ज्ञान कर रहा है, न घर है, न जंगल है, न सांप है, न सिंह है किन्तु दिख रहे हैं ये सब कुछ लो यह सिंह मुझे खानेके लिए आना चाहता है, लो यह सर्प मुझे काटना चाहता है यों सोते हुएमें भी बड़ी घबड़ाहट रहती है। किसी भी प्रकार वह जग जाय तो नींद खुलनेपर उसे एक बड़ा आराम मिलता है, विश्राम मिलता है—ओह! कोई घबड़ानेकी बात नहीं। यह मैं तो अपने घरमें पड़ा हूं, सब आरामके साधन हैं, यहाँ शेर वगैरह कुछ नहीं हैं, ऐसे ही जब मोहकी नींदमें, उल्टा ज्ञान हो रहा है तो घबड़ाहट होतीं हैं, मेरा यह सब वैभव है, यों मोहकी नींदमें एक कल्पना जगी। अब वह वैभव कुछ घटता सा है तो क्लेश होता है। कुछ घबड़ाता सा है तो कुछ खुशी मानता है। न यहाँ कोई खुशीका आधार है और न कोई क्लेशका आधार है, आत्मा तो अपने प्रदेशमात्र है। जितनेमें प्रदेश हैं, जितनेमें इसका फैलाव है उतनेमें ही तो उसका स्वरूप है। वह ही तो इसका सब कुछ वैभव है। इसके अतिरिक्त आत्माका अन्य कुछ नहीं है। लोग पर पदार्थोंमें कल्पना जगानेसे कभी क्लेश मानते हैं और कभी खुशी मानते हैं।

योगीश्वरोंकी अर्चाका कारण उनका गुणानुराग—भैया! हम योगीश्वर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

के चरणोंकी पूजा क्यों करते हैं ? उनमें कौनसा गुण है ? उनमें यही तो गुण है कि उनके ऐसे सम्यग्ज्ञानका अभ्युदय हुआ और ऐसा सत्य बोध हुआ कि उनके किसी भी कल्पनामें न तो खेद जगता है और न खुशी जगती है। समस्त पदार्थोंको अपने आप से न्यारा समझ रहे हैं। मेरा जो कुछ है वह मेरे परिणमनसे है, परका जो कुछ है वह परके परिणमनसे है ऐसा स्पष्ट ज्ञान होनेसे, मोहकी नींद न आनेसे भेदविज्ञान होने के कारण वे प्रसन्न रहा करते हैं। यह गुण है योगीश्वरोंमें, और वैसी प्रसन्नता चाहते हैं हम तो जिसको योगीश्वरोंके गुणोंकी मालूमात हो वही पुरुष तो योगीके गुणोंमें अनुरक्त होगा। यह चीज संसारके सङ्कटोंसे छुटानेका कारण बनती है। विपर्ययज्ञान का जब अभाव होता है तो यह जीव सम्यग्ज्ञानी बनता है फिर रत्नत्रयमें प्रवृत्त होता है। उस रत्नत्रयके द्वारा यह सदा कालके लिए संसारके सङ्कटोंसे छूटता है। हम प्रभु की भक्तिमें यह चाहें कि हे प्रभो ! मेरे मिथ्याज्ञानका अभाव हो, सम्यग्ज्ञानका विकास हो और फिर उस सम्यग्ज्ञानको जानते हुए अपने स्वरूपमें अपना अनुभव बनाये रहूँ। जो पंथ आपने ग्रहण किया था, जिस रास्तेसे चलकर आपने संसारके सारे सङ्कटोंका अभाव कर लिया वह रास्ता मुझे मिले. उस रास्तेसे मेरा गमन हो और मैं संसारके समस्त संकटोंसे छूट जाऊँ ऐसा मुझमें विवेक प्रकट हो। नाथ ! मैं यही चाहता हूँ. प्रभुभक्ति करके इसके अरिरिक्त अन्य कुछ चाहे यह सब मूढ़ता है।

अनाकांक्ष प्रभुभक्तिसे लाभ– भैया ! चाहनेसे मिलता भी नहीं। प्रभुका नाम जपते रहें और धन वैभव बढ़नेकी बात खूब सोचें तो सोचनेसे धन वैभव बढ़ जायगा क्या ? प्रभुभक्ति यदि हमारी निष्कपट चलती है, प्रभुके गुणोंका अनुराग करके ही चलती है तो इतना विशिष्ट पुण्यका बंध होता है कि जब तक लोकमें रहेगा लौकिक सम्पदा भी आगे बहुत मिलेगी, और यदि इन सांसारिक सुखोंकी ही चाह करली तो प्रभुभक्ति तो एक ढोंग ही रहा। भजन तो उसका हो रहा है जिसकी अन्दरसे चाह है। लोग कहते हैं कि प्रभुका नाम लेनेसे मनोवाञ्छित वस्तुओंकी प्राप्ति होती है, ठीक है पर प्रभुका नाम ले और किसी वस्तुके प्राप्त करनेकी चाह बना ले, किसी चीजकी तृष्णा बना ले तो वह चीज नहीं प्राप्त होती है। प्रभुका नाम लेते रहनेसे ही मनोवाञ्छित कार्योंकी सिद्धि नहीं होती है। हे प्रभो ! अनादिकालसे चला आया हुआ परको निज माननेका उल्टा ज्ञान मेरा समाप्त हो और मैं निजको निज परको पर जान लूँ। यहाँ एक कामना रखिये प्रभुभक्तिमें। उससे प्रभुके गुणों का हमारे ज्ञानमें विकास होगा और हमारे गुण भी प्रकट हो जायेंगे। सम्यग्ज्ञानसे ही कल्याण होता है, ऐसा निर्णय करके एक सम्यग्ज्ञानका ही यत्न करना चाहिये।

प्रमाण और प्रमाणभासकी परीक्षा– परीक्षा मुखसूत्र नाम है इस ग्रन्थ का। परीक्षा करनेके लिये यह मुख है। जैसे किसी मनुष्यकी परीक्षा मुखके द्वारा होती है इसी प्रकार समस्त ज्ञानोंकी परीक्षा इस ग्रन्थमें बताई गई है। अतएव सम-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्त ज्ञानोंके परिचय पानेके लिये यह एक मुख है। कौन ज्ञान समीचीन होता है कौन ज्ञान झूठा होता है इस बातका इस ग्रन्थमें वर्णन है। समीचीन ज्ञानका नाम है प्रमाण और मिथ्याज्ञानका नाम है प्रमाणाभास। तो इसमें प्रमाण और प्रमाणाभासका वर्णन किया गया है। प्रमाणका स्वरूप यह बताया गया कि जो स्व और अपूर्व अर्थ का निश्चय कराने वाला ज्ञान है वह प्रमाण है। अर्थात् जो अपने आपका भी निश्चय रखता है कि मैं सही हूँ और बाह्यमें जाननेमें आये हुए पदार्थका भी निर्णय रखता है कि यह पदार्थ यही है ऐसा जिस ज्ञानकामें अपना और बाह्य निर्णय बसा हो उसे प्रमाण कहते हैं। और ऐसा जो निश्चयात्मक ज्ञान होता है वह संशय विपर्यय और अनध्यवसायका प्रतिषेध करता है।

विपर्ययज्ञानके स्वरूपकी साधनाका प्रकरण प्रमाण स्वरूपके सम्बन्ध में बहुत कुछ वर्णन हो चुका इस प्रसङ्गमें एक दार्शनिक शङ्काकार यह बात रख रहा था कि विपर्ययज्ञान नामक कोई चीज नहीं है फिर किसका निषेध करनेकी बात तुम व्यवसायात्मक शब्दसे कर रहे हो? अर्थात् यहाँ कुछ दार्शनिक विपर्ययज्ञानका स्वरूप नहीं बनने देते। जैसे पापका निषेध करना हो तो पापका स्वरूप तो बताना पड़ेगा ना। पाप बुरा है मगर पापके स्वरूपका तो समर्थन करना ही पड़ेगा कि इसका नाम पाप है, इसका त्याग करना चाहिए। इसी प्रकार संशय विपर्यय और अनध्यवसाय ज्ञानका स्वरूप तो बताना ही पड़ेगा और भली प्रकार बताना पड़ेगा जिसमें कोई दोष न आये ऐसा सच बताना पड़ेगा, तब तो यह कहा जा सकेगा कि संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय जिस ज्ञानमें नहीं होते हैं वह ज्ञान प्रमाण होता है।

स्मृति प्रमोषवादके प्रयासका स्थल – इस स्थलमें स्मृतिप्रमोषवादी कह रहा है कि विपर्ययज्ञान कुछ चीज नहीं है। केवल एक स्मृतिप्रमोष होता है। स्मृति मायने स्मरण और प्रमोष मायने अभाव, गड़बड़, अधूरापन। जैसे सामने पड़ी तो है सीप और जान गए चांदी तो स्याद्वाद यह कहता है कि यह चाँदी है ऐसा जो ज्ञान हुआ वह विपर्ययज्ञान है किन्तु स्मृतिप्रमोषी यह कह रहे हैं कि वह विपर्ययज्ञान नहीं है किन्तु चाँदीका स्मरण हो रहा था और वह स्मरण फिर बीचमें चूंकि किया ऐसी झाँकी बनती है कि यह चाँदी है क्योंकि चाँदी वहाँ है नहीं और चांदीका स्मरण पूर्ण नहीं हो रहा तो उस स्मरणमें जो पूरा रूप नहीं बन सका जैसा कि स्मरण करता है मैं ठीक स्मरण कर रहा हूँ। चांदी है इस प्रकारसे समझते हैं। सीपको चांदी जानने वाला क्या यह ख्याल मनमें करता है कि मैं ठीक स्मरण कर रहा हूँ? जिस जिस घटनामें मैं स्मरण कर रहा उसमें मेरा ख्याल सही है, ऐसा तर्क उठे वह तो होता है सच्चा स्मरण ज्ञान लेकिन यहां स्मरण तो हो रहा था, किन्तु पूरा रूप नहीं बन सका, स्मृतिका अभाव हो गया तो यह हो गया स्मृतिप्रमोष; विपर्ययज्ञान कोई चीज नहीं है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्मृतिके अभावरूप स्मृतिप्रमोषके निराकरणमें इदंसे प्रतिभात अर्थके सम्बन्धमें विकल्पोद्घाटन इसका आचार्यदेव निराकरण कर रहे हैं कि यदि स्मृतिके अभावका नाम ही विपर्ययज्ञान हो तो स्मृतिका अभाव तो सोये हुए मनुष्योंके भी है, और जो जान रहे हैं कि यह चाँदी है उसे भी तुम स्मृतिका अभाव ही बता रहे तो फिर इन दोनों पुरुषोंमें फर्क क्या रहा ? इसके उत्तरम शंकाकारने यह कहा कि इस जगते हुए पुरुषको तो इदं यह ऐसा अवभास होता है और सोये हुए पुरुषको ऐसा अवभास नहीं होता यह फर्क है, अर्थात् जगने वाला तो यों समझ रहा कि यह चाँदी है, तो 'यह' रूपसे अगर सोने वाला जागता होता तो कहते कि दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है पर सोने वालेको उस रूपका कोई प्रतिभास नहीं है ? इस उत्तरपर आचार्यदेव विकल्प उठाकर पूछ रहे हैं कि उस जगने वाले पुरुषको इसमें प्रतिभास क्या हुआ ? सीप प्रतिभासमें आयी या चाँदी प्रतिभासमें आयी ? उस उल्टा ज्ञान करने वालेको क्या प्रतिभासमें आया यह' के संकेतके द्वारा ?

संस्थित अर्थके रूपमें प्रतिभास होनेपर स्मृतिप्रमोषकी अनुपपत्ति— स्मृतिप्रमोषमें यह इस संकेत द्वारा यदि सीप प्रतिभासमें आया तो क्या सीपके धर्मसे युक्त होता हुआ प्रतिभासमें आया या चाँदीके सन्निहित रूपसे प्रतिभासमें आया ? अर्थात् इस जगने वाले, उल्टा ज्ञान करने वालेको 'यह' यों जो प्रतिभासमें आ रहा वह सीपके धर्मरूपसे प्रतिभासमें आ रहा क्या ? यदि सीपके ही धर्मरूपसे प्रतिभासमें आ रहा तो वहाँ स्मरणकी गुंजाइश ही नहीं सीप ही पड़ी है और सीपके ही धर्मरूपसे 'यह' कहकर उसे प्रतिभासमें आ रहा तो स्मृति कहाँ हुई ? फिर स्मृतिका प्रमोष कहाँ रहा ? यदि फिर भी जबरदस्ती स्मृतिका प्रमोष मानोगे तो सभी ज्ञानोंके स्मृतिपना बन बैठेगा। हम जान रहे हैं कि यह चौकी है तो कोई कहेगा कि यह झूठा स्मरण है। किसी भी चीजको फिर हम नहीं जान सकेंगे। यदि यह कहो कि सामान्य मात्र का ग्रहण वहाँ किया तो यही तो तत्त्व निकला कि सामान्यका प्रतिभास हुआ और असाधारण स्वरूप नहीं मालूम पड़ा पर असाधारणस्वरूप उसमें लगा है अन्य वस्तुका प्रतिभासमें इसलिए विपर्ययज्ञान हुआ। "यह" कहकर जो हमने जाना उसमें यदि स्मृतिप्रमोष मानें उस विपर्ययज्ञानमें, तो जो पुरुष जन्मसे तिमिर रोग वाला है, आंखों में जिसको एक इस प्रकारका रोग है कि उसे दो चन्द्रमा दिखाई देंगे तो 'यह' रूपसे भी देख रहा वह कि यह है चन्द्रमा और उस समय स्मरण कुछ नहीं हो रहा, क्योंकि चन्द्रमा दुनियामें किसीके भण्डारमें नहीं रखे हैं कि किसी चन्द्रका स्मरण करलें, एक-दम प्रत्यक्ष हो रहा तो वह तुम्हारा सम्यग्ज्ञान बन जाना चाहिए, स्मृतिप्रमोष न रहना चाहिए पर स्याद्वादके यहाँ वह सम्यग्ज्ञान यों नहीं बनता कि वहाँ दो चन्द्र नहीं हैं और दो प्रतिभासमें आ रहे हैं। यों यहां भी नहीं कह सकते कि यह चाँदी है ऐसा जो ज्ञान बना है उसमें सीपके धर्म विशिष्टसे प्रतिभास हुआ है।

अन्यके सन्निहितरूपसे अवभास माननेमें स्मृतिप्रमोषकी असिद्धि—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यदि यह कहो कि वहाँ चाँदीका सन्निधान है चाँदी निकट पड़ी है तब जाना कि चांदी है, निकट कुछ नहीं पड़ा है किन्तु एक चर्चा चल रही है, किसी तरह निकट पड़ी सही, उस भावसे निकट पड़ी या अन्य प्रकारसे, इस प्रकार अगर स्मृतिप्रमोष कहते हो तो यह बात एक तो यों सही नहीं कि चाँदीका वहां सन्निधान है ही नहीं। फिर चाँदीके सन्निधानरूपसे ज्ञान कह कैसे दोगे ? और फिर उसके पासमें जो पड़ा हो उस रूपसे पदार्थका ज्ञान यदि होता है तो उस सीपके निकट अनेक परमाणु आदिक पड़े हैं, उनका प्रतिभास क्यों नहीं हो जाता। अथवा सीपके निकट अनेक चीजें पड़ी हैं, खम्भा भी है, पत्थर भी पड़े हैं उन सबके रूपसे क्यों नहीं प्रतिभास हो जाता ? तो यह बात तुम्हारी युक्त नहीं है कि स्मृतिका अभावका नाम विपर्ययज्ञान है। विपर्यय-ज्ञान और कुछ चीज नहीं है। विपर्ययज्ञान तो ऐसा भ्रान्तिरूपमें दृढ़ ज्ञान है जैसा कि यथार्थ दृढ़तामें सम्यग्ज्ञान है। जैसे सम्यग्ज्ञानमें शंका नहीं होती है ऐसे ही विपर्यय-ज्ञानमें भी विपर्यय करने वालेको शंका नहीं होती है। और, जिस सम्यग्ज्ञानमें जो पदार्थ पड़ा है उसमें पदार्थका बोध हो रहा है ऐसे ही विपर्ययज्ञानमें जो पदार्थ पड़ा है उसका अन्य पदार्थके रूपसे बोध हो रहा है। विपर्ययज्ञान है, स्मृतिके अभावका नाम विपर्यय नहीं है।

अन्यावभासरूप स्मृतिप्रमोषकी असिद्धि—यदि यह कहो कि विपर्ययज्ञान और कुछ नहीं है। एक अन्य पदार्थका अवभास हो गया इसका नाम विपर्ययज्ञान है तो यह बतलावो कि अन्य पदार्थका अवभास उस ही कालमें होता है या उत्तर कालमें होता है ? यदि कहो कि तत्कालभावी अन्यावभासका नाम विपर्ययज्ञान है तो जिस समय पदार्थको देखा जाय कि सीप पड़ी है और पदार्थको देखते ही चाँदीका ज्ञान किया तो उस ही समयमें अन्यका अविभास हो यों तत्कालभावी, अन्यावभासका नाम यदि स्मृतिप्रमोष रखोगे, अशुद्ध ज्ञान रखोगे तो उस कालमें जो घट पट आदिक पदार्थ पड़े हैं उनका भी ज्ञान हो रहा है। जैसे दूरपर एक चटाईपर रस्सी पड़ी हुई है उसे देखकर सर्पका अगर अवभास हो गया तो अन्यका अवभास तो होता है उस समय पर चटाईका भी तो अवभास हुआ है। तो जैसे रस्सीको निरखकर सर्पके अवभासका नाम स्मृतिप्रमोष कहते हो तो रस्सीको निरखकर भी जो चटाई आदिकका भी अवभास होता है वह भी स्मृतिप्रमोष हो जाय क्योंकि अन्यके अवभासका नाम तुमने स्मृति-प्रमोष रखा। इतना कहनेमें क्यों डरते हो कि उस सामने पड़े हुए पदार्थमें अन्यका अवभास हो जाय उसका नाम है स्मृतिप्रमोष क्योंकि यदि ऐसा कहोगे तो विपर्यय ज्ञानका वही स्वरूप है। तो तत्कालभावी अन्यावभासका नाम स्मृतिप्रमोष नहीं। यदि यह कहो कि उत्तरकालभावी अन्यावभासका नाम स्मृतिप्रमोष है, तो बड़ी गड़बड़ी यों होगी कि उत्तरकालमें अन्य पदार्थका अवभास होनेका नाम स्मृतिप्रमोष है तो पूर्वज्ञान को स्मृतिप्रमोष नहीं कह सकते। यदि पूर्वज्ञानका नाम स्मृतिप्रमोष रखोगे तो जितने भी पहिले ज्ञान हुए वे सब स्मृतिप्रमोष बन जायेंगे, तो अब पूर्वज्ञान जितने हैं वे सब स्मृतिप्रमोष बन गए। चाहे सम्यग्ज्ञान हो चाहे मिथ्याज्ञान हो।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विपर्ययज्ञानके स्वरूपके समर्थनका प्रयोजन—भैया ! चीज तो यों है कि कोई पदार्थ जिसे हमने लक्ष्यमें लिया जाननेके लिये, वह पदार्थ उस रूपसे जानने में न आये, किन्तु अन्य रूपसे जाननेमें आये तो उसका नाम है विपर्ययज्ञान । जैसे शरीरको आत्मा जानते है तो यह विपर्ययज्ञान है अथवा इस जीवको शरीररूपसे जान रहे हैं तो वह भी विपर्ययज्ञान है । जीवको शरीररूप समझना विपर्ययज्ञान है, शरीरको जीवरूप समझना विपर्ययज्ञान है । इसमें स्मृतिप्रमोषकी क्या बात है कि किसीका स्मरण हो रहा था और वह अधूरा रह गया वह स्मृतिप्रमोष है । विपर्यय ज्ञान कुछ चीज नहीं । यह झगड़ा इस तरहका समझिये कि कोई पापके स्वरूपको मना करे अजी पापका कुछ स्वरूप ही नहीं बनता । अपनी दलीलें दें, अजी पाप क्या चीज है । जो चीजें बनी हैं, मिली हैं वे सब भोगनेके लिए मिली हैं । जैसे बहुतसे लोग कहते हैं कि ये पदार्थ जो मिले हैं वे उपयोग करनेके लिए मिले हैं, जो इनका उपयोग न करें वे मूर्ख हैं । जैसे कहते हैं कि जिन आलू भटा न भाय वे काहेको जगमें आये ? पाप क्या चीज है जो चीज मिली है उसका उपभोग करलो, इसीलिये तो चीज मिली है । यों कहकर कोई पापके स्वरूपको मना करे तो उसने तो धर्मका ही निषेध कर दिया पाप बुरी चीज है पर पापका स्वरूप समझना लाजमी है । पाप का स्वरूप बनाना तो जरूरी है इसी कारण विपर्ययज्ञानके स्वरूपका समर्थन किया जा रहा है ।

प्रत्यक्षाकारमें स्मरणकी भी अलब्धि—विपर्ययज्ञान वास्तवमें अपना स्वरूप रखता है । कोई ख्याल ख्यालकी बात नहीं, कोई स्मृतिप्रमोषकी बात नहीं, अन्यावभास भी नहीं है । क्योंकि अन्य पदार्थका अवभास हो रहा है इसे तुम स्मृतिप्रमोष कहते हो तो यह तो बतावो कि वह जो अन्यावभास हो रहा है अर्थात् पड़ी है सीप, जान रहे हैं चाँदी और उस चाँदीकी जानकारी बन रही है तो वह बिल्कुल स्पष्ट बन रही है या नहीं ? यदि स्पष्ट बन रही है तो फिर चाँदीके ज्ञानमें स्मृतिप्रमोष क्यों कहते ? जब सामने वाली चीजका हम सामनेके रूपसे ही ज्ञान करते हैं उसका नाम तो स्मरण नहीं, स्मरण तो असमक्ष चीजका होता है, जो सामने न हो । और जब स्मरण होता है तो तत् रूपसे स्मरण होता है वह है चीज । और कदाचित् यह रूपसे भी हो तो यों कहेंगे कि यह है वह चीज ! तो स्मरणमें 'वह' जरूर लगा रहता है, चाहे उसे बोलें अथवा न बोलें । यहाँ जब 'यह' शब्दसे जो जाना जा रहा है और उसमें रजतका जो प्रतिभास है वह है बिल्कुल स्पष्ट । तो स्मृतिप्रमोषकी गुञ्जाइस नहीं, नहीं तो समस्त जितने भी प्रतिभास, जानकारी हैं सब स्मृतिप्रमोष बन जायेंगे । इससे कोई ख्यालके भूलका नाम विपर्ययज्ञान नहीं किन्तु विपर्ययज्ञान कुछ चीज है । समक्ष उपस्थित पदार्थमें अन्यरूपसे अन्य आकार आ जाय, उसका नाम विपर्ययज्ञान है ।

स्मृतिप्रमोषके विकल्पोंमें विपरीताकारवेदित्वका विचार—क्या इसका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नाम विपर्ययज्ञान कहते हो कि विपरीत आकार जाननेमें आ गया, यदि ऐसा कहते हो त बिल्कुल सही बात है इसीका नाम है विपर्ययज्ञान। पदार्थ कुछ है और विपरीत आकार जाननेमें आ गया और यह भी देखलो कि जो विपरीत आकार ज्ञानमें आया है वह बिल्कुल स्पष्ट अर्थका प्रतिभासरूपसे आया है या नहीं ? यदि स्पष्टरूपसे आया है तो वह तो प्रत्यक्षका आकार है स्मृतिका आकार नहीं। तो जो चीज हमारे लक्ष्यमें है जिसके बारेमें हम कुछ जान रहे हैं, यदि हम उसे अन्य रूपसे जान जायें तो उसका नाम विपर्ययज्ञान है। जहाँ विपर्ययज्ञान नहीं होता वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान है, निश्चयात्मक है, प्रमाणभूत है। विपर्ययज्ञानके निषेध करनेके लिये इस प्रथम सूत्रमें व्यवसायात्मक शब्द दिया है।

प्रमाणमें स्वपरव्यवसायात्मकता व हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थता— जो अपना निर्णय करे और परपदार्थोंका भी निर्णय करे उसका नाम है प्रमाण, सम्यग्ज्ञान। सम्यग्ज्ञानमें यह तारीफ होती है कि वह हितकी प्राप्ति कराये और अहित का परिहार कराये। और, कभी कभी ऐसा भी ज्ञान होता है कि जो जान तो ले, पर न वह कुछ प्राप्ति कराता है और न किसी चीजका त्याग कराता है, होता है ऐसा ज्ञान कि जिसमें केवल उपेक्षा भर रह जाती है, जानकारीमें आ गए पर न मतलब ग्रहणसे है न मतलब त्यागसे है, केवल उपेक्षा रह जाती है। तो भाई, उपेक्षा करना यह भी हितकी प्राप्ति है। सम्यग्ज्ञान जितने होते हैं उन सबमें यह विशेषता है कि हितकी तो प्राप्ति कराये और अहितका परिहार कराये।

प्रभुस्वरूपके निर्दोष ज्ञानका प्रभाव—जब हम प्रभुके स्वरूपका निर्णय करते हैं तो उसमें यदि संशय हो जाय कि उससे तो हितकी प्राप्ति नहीं होती अथवा विपर्ययज्ञान हो जाय तो उससे भी हितकी प्राप्ति नहीं और अनध्यवसाय रह जाय कुछ तो उस ओर मुड़े पर विकल्पमें कुछ न आये और ग्रहण करनेकी मनमें चाह भी नहीं है, जैसे कोई अधसोया सा रहता है, मालूम पड़ना न पड़ना सब बराबर सा रहता है, यों समारोपोंसे रहित प्रभुस्वरूपका निर्णय हो उसमें हित है। जैसे प्रभुज्ञान में न तो संशय है, न विपर्यय है, न अनध्यवसाय है वह ज्ञान प्रमाण है। प्रभु हैं केवल ज्ञानभाव और आनन्दभावका पुञ्ज। अब देखिये ! भगवानका ऐसा स्वरूप समझनेमें आनेपर कितना प्रभाव अपने आपमें आता है। प्रभु है केवल ज्ञान और आनन्दका पुञ्ज। जब हम किसी तत्त्वका ज्ञान बनाते हैं तो यह हमारा ज्ञान भी उस आकाररूप परिणम जाता है तब ज्ञान बनता है। जैसे हम चौकीको जान रहे तो यह ज्ञान चूंकि ज्ञेयाकार बना। जब हम ज्ञानानन्दमय प्रभुस्वरूपको जानेंगे तो हमारा उपयोग ज्ञानानन्दमयका बनेगा, जब हम प्रभुस्वरूपको समझ सकेंगे तो जब हमारा ज्ञान ज्ञानानन्दमयाकार बना उस कालमें विकल्प नहीं रहे, आकुलता नहीं रही तत्काल प्रभाव हमपर पड़ा और हमने अपना वहाँ हित पाया और अहितका परिहार कर लिया। कोई पुरुष प्रभुस्वरूपको "ये धन देते हैं, यह अमुक काम करा देते हैं, ये हमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पैदा करते हैं, मारते हैं" इस तरहसे प्रभुका स्वरूप जानें तो हमारा ज्ञान इसी आकाररूप रहा। तो यह ज्ञान अपनेको न छू सका। है कोई ऐसा प्रभु जो हमें पैदा कर देगा? यदि इस ओर ही दृष्टि रही तो समझो कि हमने अपना कुछ हित नहीं पाया।

अयथार्थ ज्ञानके खण्डनमें ज्ञान स्वरूपके निर्णयका मुख्य आधार—जो पदार्थ जैसा है उसे उसी प्रकार जाननेसे हित मिलता है। तो जो हितकी प्राप्ति और अहितका परिहार कराये उस ज्ञानका नाम प्रमाण है। और तत्त्वके निर्णयके प्रसंगमें दार्शनिक क्षेत्रमें जो आपसमें वाद विवाद होता है स्वरूप निर्णयके लिये वह स्वरूप निर्णय तब सम्भव है जब हम पहिले ज्ञानके स्वरूपका तो निर्णय करलें। क्योंकि लोग किसी दूसरेसे झगड़ते हैं तो किसी चीजपर नहीं झगड़ते हैं किन्तु ज्ञानपर और अक्ल पर झगड़ते हैं। और कभी कभी कह भी दें कि हमने जो ऐसा ज्ञान बनाया यह झूठ है। चीजको झूठ कोई नहीं कहता क्योंकि चीज ऐसी है तो झूठ क्या कहें, और चीज नहीं है तो झूठ क्या कहें? चीज तो चीजकी जगह है। केवल उस वस्तुके विषयमें जो जानकारी बनायी जाती है विकल्प आकार बनता है उसका खण्डन किया जाता तो वाद विवादमें शब्दार्थमें न तो ईश्वरका खण्डन किया जाता न किसी अन्य पदार्थ का खण्डन किया जाता, किन्तु बोलने वालेकी जानकारीका खण्डन किया जाता कि तुम इस समयमें जो ऐसा अपना ज्ञान बना रहे हो वह झूठ है। तो किसी ज्ञानको झूठ साबित करनेके लिये ज्ञानके स्वरूपको तो हमें समझना होगा कि ऐसी बात जिस ज्ञानमें न मिले उस ज्ञानको हम झूठ कह सकेंगे।

समारोपविरोधी ज्ञानके प्रमाणत्वकी व्यवस्था—यों प्रमाणके स्वरूपमें यह समर्थन किया जा रहा है कि जो ज्ञान सन्देहसे रहित हो उसमें उल्टा ज्ञान न कर रहे हों और जिसके विषयमें कुछ निश्चय और निर्णय बना हो वह ज्ञान प्रमाण होता है। इस प्रकार प्रमाणके स्वरूपकी सिद्धिमें यह स्मृति प्रमोषका खण्डन किया जा रहा है कि स्मृतिप्रमोष नामका कोई ज्ञान नहीं किन्तु वह विपर्ययज्ञान है। और, जो विपर्यय ज्ञानको हटा दे जो उल्टे ज्ञानको दूर कर दे उस ज्ञानका नाम है सम्यग्ज्ञान और वह प्रमाणभूत है। प्रमाणभूत अनुमान, तर्क आदिसे सत्य सिद्धान्तकी प्रतिष्ठा की जाती है। सत्य सिद्धान्तकी प्रतिष्ठा करना इस कारण अतीव आवश्यक है कि विश्वके मानव सत्य तत्त्वस्वरूप जानकर सत्पथसे चलकर समस्त सांसारिक संकटोंसे मुक्त हो जावें।

विपरीताकारवेदित्वमें स्मृति प्रमोषरूपताकी असिद्धि—विपर्ययज्ञानके स्वरूपके खण्डनमें स्मृतिप्रमोषवादी अब यह विकल्प रख रहें हैं कि विपरीत आकार का ज्ञानमें आना इसका नाम स्मृतिप्रमोष है। इसपर आचार्यदेव कहते हैं कि यह बात तो युक्त ही है और इस हीका नाम विपरीत ख्याति है। विपरीत आकार जानने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में आना यही तो विपर्ययज्ञान है। अब जरा यह बतलावो कि विपरीत आकारका अर्थ क्या है? और उस विपरीत आकारके ज्ञानमें स्पष्ट अर्थका अवभास हो रहा है या नहीं? जैसे पड़ी तो है सीप जान रहे चांदी तो यहाँ जो अर्थसे विपरीत चाँदीका आकार जाननेमें आ रहा है वह स्पष्ट अवभासरूपसे आ रहा है या नहीं? स्पष्टरूपसे अवभासमें आ ही रहा है। जो जान रहा है उसको स्पष्ट समझमें है कि यह चाँदी है तो जब स्पष्ट अर्थका अवभास है तो उसमें स्मृतिका सम्बन्ध कैसे कह सकते। स्पष्ट जो प्रत्यक्षमें झलक रहा है उसका स्मरण तो नहीं किया जा सकता, क्योंकि इस ज्ञानमें तो प्रत्यक्षका आकार है, प्रत्यक्षरूपसे ग्रहण है अथवा स्मृतिके सम्बन्धके नाम लेनेकी हठ न छोड़ें तो भी स्वरूप जब स्पष्ट अवभासका मान लिया तो यह स्वरूपसे प्रत्यक्ष ही तो रहा, इसमें स्मृतिरूपता नहीं रही। इस कारण विपरीताकारवेदित्व याने विपरीत आकारको जाना जाना, इस रूप भी तुम्हारा विकल्प तुम्हारे मन्तव्यको सिद्ध नहीं करता।

अतीतकालका वर्तमानमें ग्रहण होनेके अविवेकका स्मृतिप्रमोषमें पूर्वपक्ष— अब चौथा विकल्प रखा जा रहा है इस प्रसङ्गमें कि देखो हुआ क्या? जैसे पड़ी तो है रस्सी जान लिया सर्प, तो इस जानकारीके सिलसिलेमें होता है यह कि अतीतकालकी चीज वर्तमान कालमें ग्रहण आ रही है। इससे अतिरिक्त अन्य कुछ ज्ञान नहीं है, यही स्मृतिप्रमोष है। सर्पको पहिले देखा था, उसका वर्तमान रूपसे ग्रहण बन रहा कि यह सर्प है, इस ही का नाम स्मृतिप्रमोष है। देखिये विपर्ययज्ञानका स्वरूप मिटानेकी हठमें विपर्ययज्ञानके बारेमें क्या-क्या तर्क वितर्क सोचे जा रहे हैं। यह सर्प है ऐसा जो जाना सो स्मृतिप्रमोषवादी कह रहे हैं कि यह विपर्ययज्ञान नहीं है किन्तु पहिले सर्पको जाना था उस ही ज्ञानका, उस ही पदार्थका यह वर्तमान रूपसे ग्रहण किया जा रहा है कि यह है सर्प। सर्प तो अतीतकालमें था जबकि हममें देखा था, उस अतीतमें देखे हुए पदार्थका हम वर्तमानरूपसे ग्रहण कर रहे हैं बस यह बात है, विपर्ययज्ञान और कुछ चीज नहीं है।

अतीतकालका वर्तमानकालमें ग्रहण माननेपर स्पष्टवेदनके अभावका प्रसङ्ग—आचार्यदेव कहते हैं कि यदि अतीतकालका वर्तमानरूपसे ग्रहण होनेका ही नाम स्मृतिप्रमोष है, विपर्ययज्ञान है, तो जैसे अन्य-अन्य भी स्मरणमें आते हैं तो स्मरणमें आये हुए पदार्थका एक ऐसा प्रत्यक्ष स्पष्ट जानकारी तो नहीं हुई ना। जैसे आपका कोई भाई बम्बईमें काम करता है, आप यहाँ बैठे हुए उस भाईका स्मरण करोगे तो स्पष्ट वेदन तो न होगा। एक परोक्षरूपमें, ख्यालरूप विकल्प बनेगा। एक मित्रको सामने देख रहे हैं तो सामने बैठे हुएको देखनेमें जैसी स्पष्ट जानकारी बनती है ऐसा क्या ख्यालमें आने वाले पदार्थकी इतनी स्पष्ट जानकारी होती है? नहीं होती है। लेकिन यहाँ जो रस्सीको साँप जान रहे हैं तो इस सर्पज्ञानकी तो स्पष्ट जानकारी बन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रही है, स्मरणकी तरह अस्पष्ट जानकारी नहीं है। तो यदि अतीतलकामें वर्तमानरूप से ग्रहणका नाम स्मृतिप्रमोष हो तो उसका स्पष्ट वेदन न होना चाहिए लेकिन वेदन स्पष्ट होता है।

अतीन्द्रिय ज्ञानमें स्पष्टता माननेसे सर्वज्ञताकी सिद्धि - शायद यह कहो कि इस विपर्ययज्ञानमें इस स्मृतिप्रमोषके प्रसङ्गमें ऐसी ही विलक्षणता है कि अतीत कालकी बातोंका स्पष्टरूपसे अधिक जानकारी बन रही है अर्थात् वहाँ सर्पका तो स्मरण है। उसे देखा था १० दिन पहिले, किन्तु उस भूतकालमें जाने हुए पदार्थकी आज सामने अधिक स्पष्ट जानकारी बन रही है। तो कहते हैं कि इस तरह तो सर्वज्ञसिद्धि हो जायगी। ये स्मृतिप्रमोषवादी प्रभाकर सर्वज्ञ नहीं मानते जब स्मरणमें भी इन्द्रिय का उल्लघन करके स्पष्ट सम्वेदन हो गया तो भूतकालके जितने भी पदार्थ हैं, भविष्य में जितने भी होंगे उनका भी यदि किसीको प्रत्यक्ष स्पष्ट सम्वेदन होता है तो उसका निषेध क्यों करते? क्योंकि जैसे यहाँ पर सर्पकी स्मृतिमें भी जब इन्द्रियके बिना एक स्पष्टता आ गयी तो सर्वज्ञदेवके इन्द्रियाँ हैं नहीं तो अतीतकाल और भविष्यकालके पदार्थोंकी जानकारीकी स्पष्टता आ जाना चाहिए। यदि यह कहो कि इस विपर्ययज्ञान में तो परम्परासे इन्द्रियके ही कारण वैशद्य होता रहता है तो यह बात यों युक्त नहीं कि इसी प्रकार तो सभी हमारी स्मृतियाँ हैं, सबमें परम्परा इन्द्रियका सम्बन्ध है तो उसका भी स्पष्ट सम्वेदन हो जाना चाहिए। यों स्मृतिप्रमोष तुम्हारा सिद्ध नहीं होता।

अनुभवके साथ क्षीरोदकवत् अविवेकसे उत्पाद माननेका पूर्वपक्ष और उसके विकल्प— अब अन्तिम विकल्प है यह कि अनुभवके साथ पानी और दूधकी अविवेककी उत्पत्ति हो इसका नाम स्मृतिप्रमोष है। जैसे पानी और दूध मिल जायें तो उसमें एकताका अनुभव जगने लगना, अविवेक हो जाना, पानी कहाँ है, दूध कहाँ ऐसा अलग-अलग विवेक नहीं बनता इसी प्रकार यह चाँदी है इस प्रकारका जो विपर्ययज्ञान हुआ उसमें भी यह और चाँदी इन दोनों ज्ञानोंका अविवेकसे एकमेकपना बन गया है तो पूछते हैं कि अविवेक नाम किसका है? क्या भिन्न-भिन्न दो सत् पदार्थों का अभेदसे ग्रहण हो जानेका नाम अविवेक है? याने भिन्न-भिन्न सत् दो ज्ञानोंका अभेदसे ग्रहण हो जानेका नाम अविवेक है या भिन्न-भिन्न सत् दो ज्ञानोंका संयोग हो जानेका नाम अविवेक है? अथवा एक ज्ञानके बाद अन्तरङ्ग हुए बिना दूसरा ज्ञान जग जानेका नाम अविवेक है? यहाँ तीन विकल्प रखे हैं। अर्थात् जैसे वहाँ सीपको यह चांदी है ऐसा ज्ञान किया तो स्मृतिप्रमोषवादियोंका कहना यह है कि वहाँ हुए तो दो ज्ञान हैं – एक तो यह और दूसरा ज्ञान यह हुआ कि चाँदी है तो "यह" तो प्रत्यक्ष आया और चाँदीका स्मरण आया। यों जो दो ज्ञान होते हैं उन दो ज्ञानोंका जहाँ अभेदरूपसे ग्रहण हो गया उसका नाम स्मृतिप्रमोष है, यदि अलग-अलग ही ये ज्ञान रहते तो एक कहलाता प्रत्यक्ष और एक कहलाता स्मृति, लेकिन इनका तो अभेदरूपसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ग्रहण बन रहा। यह चाँदी है, दो ज्ञान भिन्न नहीं दिख रहे किन्तु दो ज्ञानोंका एक बन रहा है।

क्षीरोदकवत् अविवेकसे उत्पादकके विकल्पोंका निरसन--अब यहाँ समाधानमें कहते हैं कि क्या वे दो ज्ञान भिन्न भिन्न हैं? और, फिर अभेदका ग्रहण हो रहा क्या? यदि ऐसा है तो इसका ही नाम विपरीत ख्याति है। दो ज्ञानोंमें संश्लेश होनेका नाम अविवेक कहा सो भी युक्त नहीं। ज्ञानोंमें संश्लेश तो बन ही नहीं सकता। जो मूर्त पदार्थ हों उनका सम्बन्ध हुआ करता है। प्रत्यक्ष ज्ञान हो वह भी ज्ञान है, स्मरण ज्ञान हो वह भी ज्ञान और ज्ञानका सम्बन्ध क्या? आकाशका सम्बन्ध क्या! तो ज्ञानोंमें संयोग सिद्ध नहीं होता। संयोग तो मूर्तिक पदार्थोंमें ही हुआ करता है। इस कारण यह भी पक्ष तुम्हारा सही नहीं है। अब अंतिम बात कही जा रही है कि यदि यह मानोगे कि बिना अंतरालके तुरन्त ही नया ज्ञान बन गया। इसका नाम स्मृति प्रमोष है याने जैसे आँखें खोलकर देखा और यह ज्ञान हो गया कि यह चांदी है तो पहिले तो हुआ ज्ञान "यह" और ठीक अनन्तर तुरन्त ज्ञान हुआ कि चाँदी है तो यह बिना अन्तरालके तुरन्त अनन्तर दूसरा ज्ञान बन गया इस का नाम स्मृति प्रमोष है। यदि यों कहते हो कि अनन्तर ज्ञान बन जानेसे स्मृतिप्रमोष बन जाता तो समस्त स्मरणोंके बाद होने वाले जितने भी ज्ञान हैं सबको स्मृति प्रमोष कह दो। जैसे जब हम अग्निका अनुमान कर रहे हैं कि इस पर्वतमें अग्नि होना चाहिये धुवां होनेसे। तो उस अनुमेय अग्निका पहिले कुछ स्मरण किया फिर उसका अर्थ किया। फिर थोड़ी देरमें अग्निको प्रत्यक्ष देख लें तो उस ही अग्निके स्मरणके बाद कितने ज्ञान होते चले जा रहे हैं। तो वे सबके सब ज्ञान स्मृतिप्रमोष बन जायेंगे। केवल ख्याति बन जाय, झूठ बन जाय तो ऐसा तो है नहीं। तब आपका स्मृतिप्रमोष सिद्ध नहीं है।

विपर्ययज्ञानकी सीधी नीति—बात यह है कि कभी कभी इन्द्रियमें दोष होनेके कारण पदार्थका और प्रकारसे ज्ञान हो जाता है। किसीको कम दिखता हो या अन्यरूपसे दिखता हो कम चमत्कृत वस्तु भी अधिक चमत्कृत दिखती हो, ऐसे दोषकी स्थितिमें सीप चाँदीरूपसे जाननेमें आ रही है यह है विपर्ययज्ञान और उस विपर्ययज्ञानके प्रतिषेधके लिए प्रमाणके स्वरूपमें व्यवसायात्मक शब्द दिया है। जो ज्ञान व्यवसायात्मक हो वह ज्ञान प्रमाण होता है। यह बात विपर्ययज्ञानके स्वरूपके समर्थनमें कही जा रही है।

द्विचन्द्रवेदनमें स्मृतिप्रमोषकी असिद्धि—इस प्रसङ्गमें एक निर्णयकी बात और रखी थी—यदि उल्टे ज्ञानमें स्मरणका सम्बन्ध माना जावे तो जब कोई जन्मसे नेत्रका दोष वाला पुरुष किसी चन्द्रको निरखता है तो दो चन्द्र दीखते हैं तो वहाँ स्मरण किसका हुआ? किसीका नहीं ना। तो उसको कैसे स्मृतिप्रमोष सिद्ध करोगे?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इसके उत्तरमें यदि शङ्काकार यह कहे कि दो चन्द्रका जो वेदन होता है वह स्मरण ही है। दो चन्द्रका ज्ञान हो जाना यह सीधा स्मरण है। तो फिर इसका अर्थ यह हुआ कि इन्द्रियसे उस ज्ञानका कोई ताल्लुक नहीं रहा, आप देख लो जितने भी स्मरण ज्ञान होते हैं उन ज्ञानोंमें क्या कान करते है? आपको बम्बईमें रहने वाले किसी मित्रकी याद आयी तो क्या इस स्मरणज्ञानमें आपके नेत्र, कान जिह्वा अथवा नासिका वगैरह इंद्रियां काम करती हैं? ये कोई इन्द्रियां काम नहीं करती हैं। तो आंखों से देखा चन्द्रमा और नेत्रोंके दोषसे वहां दिख गए दो चन्द्रमा तो उन दो चन्द्रमावोंके दिखनेका नाम यदि स्मरण कह रहे हो तो इसका अर्थ यह हुआ कि दो चन्द्रमाका ज्ञान करनेमें इन्द्रियका कोई ताल्लुक नहीं रहना चाहिये, पर ताल्लुक है। और, इस इन्द्रियके ताल्लुक वाले इस कल्पित स्मरण में तुम इन्द्रियका सम्बन्ध मानो तो सारे स्मरणमें इन्द्रियका सम्बन्ध बनना चाहिए अन्यथा इस द्विचन्द्र वेदनमें भी इन्द्रियसम्बन्ध नहीं होना चाहिये पर ऐसा तो देखा नहीं गया है। यहां तो नेत्रसे देखते हैं तो दो चन्द्र दीखा करते हैं। और, इसी कारण फिर इन्द्रियका विकार भी सिद्ध नहीं होता। यदि स्मरणसे दो चन्द्र दिख गए तो स्मरणमें इन्द्रियां कोई काम नहीं करती यह नियम है, न नेत्र, न कर्ण, आदि फिर उसमें विकारकी बात ही क्या रही? तो यह भी सिद्धि नहीं बनती कि दो चन्द्रका वेदन होना ही स्मरण है।

विपर्यय ज्ञानमें स्मृतिका असहयोग—भैया! सीधी सी तो बात है। जैसे दो चन्द्रमा दिखे तो यह भी उल्टा ज्ञान बना। जैसे रस्सीको सर्प जाना तो यह भी उल्टा ज्ञान है, सीपको चाँदी जाना तो यह भी उल्टा ज्ञान है, सीपको चाँदी जाना तो यह भी उल्टा ज्ञान है, शरीरको जीव जाना तो यह भी उल्टा ज्ञान है, जीव ज्ञान है, ये सब मिथ्याज्ञान है, इसमें स्मरणकी कौनसी बात है। लक्ष्यमें जो चीज सामने आयी, जाना तो उसे ही ना। तो उस ही रूपसे जान लेते तब तो वह सम्यग्ज्ञान था, पर अन्यरूपसे जान लिया तो उसका नाम मिथ्याज्ञान हो गया।

प्रत्यक्षाकारोंको स्मृतिरूप माननेपर सभी ज्ञानोंमें संदेहकी आपत्ति—देखिये इन प्रत्यक्षाकारोंको भी स्मृतियां माननेपर तो किसी भी बातमें हम प्रमाणत्व नहीं स्थापित कर सकते। यदि कहीं चांदी भी पड़ी हो और उसे चाँदी है यह जान लिया तो इसमें भी यह बात आ सकेगी कि क्या हमारा यह ज्ञान स्मृतिमें स्मृतिप्रमोष है। या सत्य प्रतिभासमें स्मृतिप्रमोष है क्योंकि स्मृति माननेके लिए उत्तरकालमें प्रत्यय हुआ करता है। जैसे जाना कि यह चांदी है, थोड़ी देरमें यह जाना कि अोह! चाँदी नहीं है। तो जो जब उत्तर काल यथार्थ ज्ञान किया वह बाधक ज्ञान बना तब यह चित्तमें बैठा कि वह स्मृति प्रमोष था। तो जब हम किसी भी सही पदार्थको जान रहे हों तो जब हम किसी भी सही पदार्थको जान रहे हों तो जब तक यह निश्चय न हो जाय कि अब इस ज्ञानके बाद इस ज्ञानको झुटला देने वाला दूसरा ज्ञान नहीं बनेगा तब वह सही माना जायगा। तो यों तो सभी ज्ञानोंमें प्रमाणता नहीं आ सकती,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जिस चाहेकी हम शङ्का कर बैठेंगे। बिल्कुल निकट यह चौकी है इसे जान लिया कि यह चौकी है। कुछ हम इसमें यह बाट देखें कि इस ज्ञानमें बाधा देने वाला दूसरा ज्ञान न हो तो हम जान सकेंगे कि यह चौकी है इतनी बाट हेरनेकी क्या जरूरत पड़ती है? सीधा है, प्रत्यक्ष देखा और जान गए। पदार्थको यदि अन्य रूपसे जाना तो विपर्ययज्ञान है और उस ही रूपसे जाना तो वह सम्यग्ज्ञान है। तो विपर्ययज्ञानकी मनाई नहीं कर सकते। और, न यह कह सकते कि उल्टे ज्ञानमें दो ज्ञानोंका सम्बन्ध है, यह चांदी है यह भी ज्ञानमें आया और चाँदी है यह स्मरण ज्ञानमें आया, यों दो ज्ञानोंका नाम स्मृति नहीं है इस कारण यह बात बिल्कुल ही ठीक कही गई कि विपर्ययज्ञानका निराकरण व्यवसायात्मक विशेषणसे होता है।

अपूर्वार्थविशेषणसे धारावाही ज्ञानके प्रमाणत्वका निराकरण – अब स्वरूपको पुनः समझ लीजिए। आचार्यदेवने प्रमाणका स्वरूप यह कहा है—जो निज का और अपूर्व अर्थका निश्चय कराये वह ज्ञान प्रमाण होता है। ऐसा स्वरूप बतानेमें सब दोष टल गए एक ज्ञान होता है धारावाही। धारावाही ज्ञान उसे कहते कि किसी एक पदार्थको जाना और जितने रूपसे जाना, उतने ही रूपसे उस पदार्थको बराबर जानते रहें तो उसका नाम धारावाही ज्ञान है। वही वही लगातार जाना जा रहा है उसे धारावाही कहते हैं। वह ज्ञान प्रमाण नहीं माना जाता है जैसे कोई पागल पुरुष किसी एक ही शब्दको ५० बार बोलता रहता है तो उसकी कोई कीमत भी समझता है क्या? उसकी कोई कीमत नहीं है। इसी प्रकार जो पदार्थ हमारे एक बार जानने में आ गया, जाननरूपसे आ गया उससे कुछ भी न बढ़कर उस ही रूपसे पचासों बार जानना यह धारावाही ज्ञान प्रमाणभूत नहीं माना है। जैसे जान लिया कि यह चौकी है। अब इसे १०–२० बार बोलते जायें—यह चौकी है यह चौकी है, यह चोकी है यों कोई बार–बार वही शब्द बोलता जाय तो लोग तो सुनकर उसे ऊब जायेंगे। और, बादमें उस बोलने वालेको मूढ़ भी बतावेंगे। आज इसका चित्त क्या बन गया, तो एक ही पदार्थको बराबर उस ही रूपमें जानते जायें वह धारावाही ज्ञान है, वह प्रमाण नहीं है, यह बात इससे सिद्ध है कि इस स्वरूपमें अपूर्व विशेषण दिया है जो अपूर्व अर्थको जाने वह प्रमाण है। धारावाही ज्ञान अपूर्व अर्थको नहीं जानता जो पूर्वअर्थको जाने, एक उस ही एकको जाने, एक ही जाने वह प्रमाण नहीं है। अपूर्व अर्थ यह विशेषण देनेसे धारावाही ज्ञानकी प्रमाणताका निराकरण होता है, और व्यवसायात्मक शब्द देनेसे संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय इन तीन कुज्ञानोंका निराकरण होता है।

अपूर्वार्थके प्रस्तावमें शंका – बात यह ज्ञानके स्वरूपकी कही जा रही है। ज्ञान कैसा होना चाहिए कि वह सम्यक् माना जा सके। इस प्रसङ्गमें यह बात कही जा रही है कि जो ज्ञान नये–नये पदार्थको जाने, नई–नई जानकारी किया करे वह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञान प्रमाण है। जिसे एक बार जान लिया उसे ही ५० बार जानते रहें उसे प्रमाण नहीं कहा। इस बातको सुनकर एक शंकाकार यह कहता है तो लोकमें प्रायः सभी मनुष्य एक पदार्थका बारबार ज्ञान करते दिखाई देते हैं तो फिर क्या वे सब अप्रमाण रूप हो जायेंगे। ऐसा तो नहीं है, क्योंकि वहाँ भी प्रवृत्ति देखी जाती है तो फिर इस तरह तुम्हारी बात यहाँ कैसे सिद्ध हो। जैसे जो भोजन आज जाना वही कल भी जाना था, वही रोज–रोज जानते है इसी प्रकार आगे भी वे सारे पदार्थ वैसेके ही वैसे जानें जायेंगे जैसा कि पहिले ज्ञान बना था। तो अपूर्व अर्थका जानना प्रमाण है ऐसा कहनेपर तो ये सब अप्रमाण बन जायेंगे। कल तो जान रहे थे कि यह दूकान हमारी है और आज भी जान रहे कि यह दूकान हमारी है तो बराबर उसी ज्ञानको जाननेका नाम प्रमाण नहीं रखा, इसे अप्रमाण कह दिया तो हम जो यह बराबर जान रहे हैं क्या यह प्रमाण नही है ?

अर्थपरिच्छित्तिविशेषसे अपूर्वार्थिताका परिचय—इसपर आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि यहां ये सब प्रमाण हैं क्योंकि इन ज्ञानोंसे हमारी प्रवृत्तियाँ भी बनती हैं वहीं भोजन आज जाना और हम खाने लगे, तो प्रवृत्ति प्रमाणमें ही तो होती है। सो वह सब प्रमाण तो यों बना कि कलका खाया हम भूल गये। कल जो बात हुई थी वह पुरानी बन गई। अब उसीको आज नये ढङ्गसे जान रहे हैं। जैसे वही भोजन आपने कल किया मान लीजिए, वही आज खानेको बैठेंगे तो आपको वहां कुछ अपूर्व मानना पड़ेगा, हम कुछ नई चीज खा रहे हैं, नया स्वाद ले रहे हैं, नया ज्ञान कर रहे हैं। यह चीज वही है यद्यपि, लेकिन समय गुजर जानेके बाद फिर उस ही पदार्थको जानने लगनेसे वह नई चीज सी बन जाती है। अर्थका हमने परिज्ञान किया वहां हमने विशेष बात जाना और लगातार जाने हुए पदार्थमें कुछ विशेष–विशेष जानते रहें तो वह भी प्रमाणभूत है। जैसे वृक्षको देखा पहिले तो यह जाना कि यह वृक्ष है, फिर जाना कि यह बड़का वृक्ष है तो उस ही वृक्षको हमने अब भी जाना पर कुछ विशेष जाना। यह घड़ी है, फिर जाना कि यह अमुक कम्पनीकी है, यह ऐसी बढ़िया चलती है अथवा इतनी घटिया है। उस ही बारेमें कुछ विशेष बात जानते रहें तो तो यह सब प्रमाणभूत है।

प्रमाणका प्रभाव—प्रमाणका यह प्रभाव होता है कि वह किसी न किसी प्रकारकी प्रवृत्ति हितप्राप्ति, अहित परिहार या उपेक्ष बना दे। जैसे एक आत्माको हमने जाना तो पहिले सामान्यरूपसे जाना, आत्मा है, दर्शन है, चरित्र है, शरीरसे न्यारा हैं तो विशेष–विशेष जानना वह तो प्रमाणभूत है और उससे कुछ नई–नई बातें जानते हैं तो उसमें उमङ्ग बढ़ती है और बड़ा संतोष उत्पन्न होता है। इतनी ही बात हमने कल जानी थी, वहीकी वही बात हम आज भी जान रहे है, जिन बातोंको पहिले जाना था अब भी हम उन ही बातोंको जान रहे हैं तो भी वही चीज कहला-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

येगी पुरानी चीज न कहलायेगी। एक बार जाननेके बाद भी उसका विस्मरण हो जाय या उसके बाद अन्य अन्य जानकारी होने लगें और तब फिर हम पुरानी ही बात को यदि जानें तो उसे भी हम अपूर्व अर्थका ज्ञान कहेंगे।

प्रमाणका फल और लाभ भैया ! अपूर्व पदार्थका ज्ञान होना यह प्रमाण है और इस ज्ञानमें प्रसन्नता है, हितकी प्राप्ति है, अहितका परिहार है और जहाँ उपेक्षा करने योग्य है वहाँ उसकी उपेक्षा रूप परिणमन है वही हित प्राप्ति है। यों सम्यग्ज्ञान संशय विपर्यय अनध्यवसाय तीन ज्ञानोंका प्रतिषेध करता है। जो इस दोष से रहित हो ऐसा जो सच्चा निर्णय करने वाला ज्ञान है वह प्रमाणभूत होता है। इस ज्ञानकी परीक्षासे जो असत्यवादोंके पक्ष आयेंगे उनका खण्डन किया जायगा। तुम्हारा यह ज्ञान यों सही नहीं है। इस प्रकार ज्ञानके दोष क्या हैए, ज्ञानके गुण क्या हुए इसकी परीक्षा कर लेना एक बहुत अधिक न्यायसे और दृढ़तासे ज्ञान करनेकी इच्छा करने वालेको पहिले आवश्यक है कि वह ज्ञानके गुण और ज्ञानके दोष समझले कि ऐसा गुण हो तो वह ज्ञान सही है और यदि दोष हो तो वह ज्ञान झूठा है उस ही ज्ञानकी यहाँ परीक्षा की जा रही है।

अपूर्वार्थका विवरण—स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय कराने वाला ज्ञान प्रमाण है। इस प्रमाणके स्वरूपमें अब अपूर्व अर्थका विवरण चल रहा है। अपूर्व अर्थ सीधा भाव यह है कि जिसे नहीं जाना उसे जानना। जाने हुएको जानते रहना प्रमाण नहीं कहा गया है। जो पदार्थ एक बार जान लिया उस ही को बराबर जानते रहना इसमें प्रमाणका कोई फल नहीं है। प्रमाणका फल है हितकी प्राप्ति करना और अहित का परिहार करना, या उपेक्षा भाव करना और अज्ञान दूर होना। ज्ञानके ४ फल हैं तो जिस पदार्थको एक बार जान लिया उसको निरन्तर दुहरानेसे, जानते रहनेसे न तो हितकी प्राप्ति और न अहितका परिहार है वह तो एक उन्मत्त जैसी चेष्टा है। तथा उपेक्षा भाव भी नहीं आता है, और न अज्ञान निवृत्तिका फल है क्योंकि प्रथम बारके जान लेनेसे ही अज्ञान निवृत्ति हो गयी थी। तो ज्ञात अर्थको पूर्व अर्थ कहते हैं और अज्ञात पदार्थको अपूर्व अर्थ कहते हैं। जो नहीं जाना गया उसका जानना सो सम्यक् ज्ञान है और प्रमाण है। इस ही अपूर्व अर्थकी व्याख्या सूत्र द्वारा कर रहे हैं।

अनिश्चितोऽपूर्वार्थः ॥ ४ ॥

अपूर्वार्थ शब्दका क्षेत्र जो अपने स्वरूपसे या आकार विशेष रूपसे अवगत न हो, अनवगत है ऐसा सब कुछ अपूर्व है। जो ज्ञान द्वारा समझा न हो वह सब अपूर्व अर्थ है। इसमें यह जानना कि अपूर्व अर्थका एकाग्र हठ नहीं है। ज्ञान अर्थको फिरसे भी जानते रहना यद्यपि अप्रमाण है। मगर ज्ञात अर्थसे कुछ विशेषताको लेकर जानना, कुछ योजनको लेकर जानना सो प्रमाण है। जैसे आत्माका ज्ञान कर लिया

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अब उस आत्माका ज्ञान कर लिया तो उस आत्माका ज्ञान निरन्तर करते रहना योग्य है। उसकी दृष्टि बनाये रहें तो उस ज्ञानने एक प्रयोजन बनाया बीच में उपयोग बिगड़नेकी सम्भावना है रागादिक होनेकी सम्भावना है, उनके निराकरणका वहाँ प्रयोजन बना हुआ है और फिर बारबर आत्माके जानते रहनेसे विशुद्ध आनन्द होता है कुछ विशेष विशेष अन्तः प्रवृत्तियाँ चलती रहती हैं और फिर लोकव्यवहारमें जिस किसी को भी जाना कि यह कोई मनुष्य आ रहा, फिर जाना कि यह अमुक आदमी है, इस तरह कुछ विशेषताको लेकर जानते रहें तो वह भी अपूर्व अर्थकी तरह है। ऐसा भी भाव अपूर्व अर्थमें भरा होता है। ऐसे अपूर्व अर्थका व्यवसाय करने वाला ज्ञान प्रमाण होता है।

प्रमाणस्वरूपमें अपूर्वार्थ विशेषण देनेसे धारावाही ज्ञानके प्रमाणत्वका निरसन – अपूर्व अर्थ शब्द देनेसे केवल उस ज्ञानका निराकरण किया है जो ज्ञान निष्प्रयोजन जाने हुएको ही उतनेके ही उतने रूपमें बराबर जानता रहे, न उसका कोई प्रयोजन है, ऐसे धारावाही ज्ञानकी प्रमाणता नहीं है। उसका निराकरण करनेके लिए अपूर्व अर्थ विशेषण दिया है। अब किन किन दशाओंमें जाने हुए भी पदार्थ अज्ञातकी तरह हैं, अपूर्वकी तरह हो जाते हैं, उन स्थितियोंको बतानेके लिए ५ वाँ सूत्र कह रहे हैं।

दृष्टोऽपि समारोपात्तादृक् ॥ ५ ॥

ज्ञात पदार्थकी भी समारोपके सम्बन्धसे अज्ञातसमता – 'दृष्टः अपि समारोपात् तादृग् भवति' प्रतिपन्न अर्थ भी, देखा जाता हुआ पदार्थ भी समारोप आ जानेके कारण न जानेकी तरह, अदृष्टकी तरह हो जाता है। किसी भी पदार्थको जान लिया था। बीचमें संशय हो गया या मिथ्याज्ञान बन गया या अनध्यवसाय बन गया तो फिर वह उसे जाने तो अपूर्व अर्थ है वह। जैसे कल भी भोजन किया था, आज भी भोजन करेंगे। तो ऐसा भोजन अनेक बार किया गया पर बीचमें अनध्यवसाय हो गया था। उसकी ओरसे चित्त हट गया था। तो जो कल खा चुकनेके बाद तुरन्त जो स्थिति थी वह अब तो आज नहीं है। जैसे मानो कल १० बजे भोजन किया था, आज भी उसी स्थितिमें वही भोजन करे तो उसमें क्या फर्क रहा? सिर्फ स्थिति बदल गयी, अनध्यवसाय हो गया था, बल्कि यहाँ तक हो गया कि बिना खाये उस भोजनके रसका भी परिज्ञान नहीं हो सक रहा है। जैसे कल भी खाया था तो ऐसी जब स्थितियाँ बन जाती हैं तो ज्ञात किए हुए भी पदार्थ अज्ञातकी तरह हो जाते हैं।

आत्माके निरन्तर ज्ञानमें ज्ञानफल—कल आत्माकी निरन्तर बात सुनी थी, अब २३ घंटा समय गुजर जानेपर आत्माकी ही बात फिर सुनी जा रही है। तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कोई कहे कि यह क्या रोज-रोज आत्मा-आत्माका ही व्याख्यान दिया जा रहा है ! तो उससे यह कहो कि यह क्या रोज-रोज ऊधम मचा रखा है कि वही दाल रोटी जो कल खाया था आज भी वही खाया, जब देखो तब वही दाल रोटी खाते, यह क्या ऊधम सा मचा रक्खा है ? तो वहाँ तो यह समाधान मिल जाता कि हमारा यह ऊधम नहीं है, क्षुधा है, वेदना है, उसके बिना शरीर चलता नहीं है वह ऊधम नहीं है। तो ऐसे आत्माका भी यह बारबारका परिज्ञान यह सब सप्रयोजन है और इतना सप्रयोजन हैं कि होना तो यह चाहिए कि निरन्तर बिना अन्तरालके अधिकसे अधिक समय आत्माका निर्विकल्परूपसे एक स्वरूप परिज्ञान चलता रहे, उसका फल यह होगा कि सदाके लिये संसारके संकटोंसे छूट जायेंगे, निर्वाण प्राप्त होगा।

अपूर्व अर्थके ऐकान्तिक अर्थका निषेध— तात्पर्य वह है कि जो पदार्थ एक बार जान लिया वह भी अज्ञातकी तरह हो जाता है यदि संशय विपर्यय और अनध्यवसाय वहाँ आ जाय। केवल अज्ञात अर्थका ही नाम अपूर्व अर्थ नहीं है किन्तु ज्ञात भी अर्थ हो और उसमें संशय आदिक आ जायें तो वह भी अज्ञात अर्थात् अपूर्व अर्थ हो जाता है। जैसे कि जिन शास्त्रोंका अध्ययन किया है, पढ़ चुके हैं, पर बीचमें अभ्यास छूट जानेसे वे शास्त्र भी न पढ़ेकी तरह हो जाते हैं, इस प्रकार भी अपूर्व अर्थका निश्चय कराने वाले जितने भी ज्ञान हैं वे सब ज्ञानप्रमाणरूप हैं। तब यह बात सामान्यरूपसे तो कहना चाहिये कि अज्ञात अर्थको जानसे वाला ज्ञान प्रमाण है पर इसमें अज्ञातका अर्थ लगानेमें सर्वथा एकान्त हठ न करना चाहिए। ज्ञात अर्थ भी समारोप होनेके कारण अर्थात् संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय ज्ञान आ जानेके कारण अज्ञात हो जाता है और फिर उसका ज्ञान प्रमाणभूत हो जाता है। चाहे वस्तु जान ली गई हो अथवा न जानी गई हो, जिसमें निर्दोष अर्थ परिच्छेद बने, पदार्थका विज्ञान बने कुछ अपूर्व तत्त्वकी झाँकी आये तो वह प्रमाणभूत है, उसमें कोई दोष नहीं आता।

विशेष अर्थ परिच्छित्तिसे अपूर्वार्थिका निर्णय—कोई यह पूछे कि जो पदार्थ जान लिया गया है। उस ज्ञात पदार्थमें जो दूसरा ज्ञान बनाया है तो कौनसी विशेषता कर रहा है जिससे वह प्रमाण बन जाय ? एक बार जिस पदार्थको जान लिया उसे फिर दुबारा जान लिया तो इस द्वितीय ज्ञानने कौनसी विशेषता उत्पन्न कर दी जिससे वह प्रमाण कहा जाने लगा ? उत्तर— यह देख लीजिये, अगर विशिष्ट प्रमा उत्पन्न हुई है अर्थात् पदार्थका कोई विशेष मर्म ज्ञात हुआ है तो उसे प्रमाण मान लीजिये और वहीका वही बिना प्रयोजन उतने ही रूपमें बारबार ज्ञान कररहा हो कोई तो वह मान लीजिये। यों समझ लीजिये कि जिसे बिना प्रयोजन बिना किसी परिणामके उन्मत्त पुरुष पचासों बार कहता रहता है उनका कोई फल नहीं मिलता ऐसे ही जो जाने वह तो अप्रमाणभूत है। और विशेष विशेष अर्थका मर्म जानते जायें तो वह सब ज्ञान कार्यकारी है और प्रमाणभूत है, हाँ विशिष्ट उसमें कुछ परिच्छेदन हो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञान हो तो वह प्रमाण है। न हो विशेषज्ञान तो वह प्रमाण नहीं है। विशेषज्ञान होनेपर भी अधिगत जाने हुए पदार्थमें भी यदि यह कहने लगें कि कुछ नहीं किया तो जो नहीं जाना गया है उसमें भी विशेष जानकारी बने तो वहाँ भी कुछ नहीं किया समझिये। सो कुछ विशेष जानकारी आ जाय वही ज्ञानका करना कहलाया। चाहे जाने हुए पदार्थमें विशेष जानकारी आये चाहे न जानेमें विशेष जानकारी आये, जहाँ विशेष तत्त्वकी जानकारी बनती उसे प्रमाण कहते हैं।

केवलज्ञानके प्रमाणत्वका शंकासमाधान अब यहाँ यह शंका हुई है कि केवलज्ञान तो ज्ञात–ज्ञातको ही बारबार जानता रहता है उसे प्रमाण कैसे माना जाय ? उसे धारावाही ज्ञान मान लेना चाहिये क्योंकि जो जाना था उसीको बारबार जाना गया ना। उत्तर प्रथम बात तो यह है कि दार्शनिक क्षेत्रकी कोटिमें केवलज्ञानमें न हम प्रमाणताका ख्याल करें, न अप्रमाणताका ख्याल करें, जहाँ पदार्थका निर्णय किया जा रहा है वहां प्रमाणताका और अप्रमाणताका दार्शनिक क्षेत्रमें विश्लेषण किया जाता है और फिर केवलज्ञानमें उस ही पदार्थको बारबार जानते रहने का फल वहां अनन्त आनन्द पड़ा ही हुआ है। ऐसा फल यहां धारावाही ज्ञान करने वालेको नहीं मिलता। एक वहां ऐसी स्वाभाविक बात है, उनका वह अनन्त आनन्द अविशेष आनन्द है, विशिष्ट आनन्द नहीं किन्तु व्यापक सामान्य आनन्द है। विशिष्ट आनन्दका अर्थ है तरंगित आनन्द। जिसमें चढ़ाव उतार हो, विषय बदले वहां जो आनन्द होता है उसे तो समझिये विशिष्ट आनन्द और जहां चढ़ाव उतार नहीं, परका विषय नहीं, परका आश्रय नहीं वहां यद्यपि वह आनन्द सब आनन्दोंसे विलक्षण है लेकिन उसे विशिष्ट नहीं कहा किन्तु एक सामान्य कहा। जो कि अनन्त काल तक वहीका वही बना रहेगा। ऐसे विलक्षण व्यापक सामान्य एक स्वरूप आनन्दकी प्राप्ति में समर्थ ऐसा ही यह ज्ञान हो रहा है।

सर्वज्ञदेवका विलक्षण अविशिष्ट ज्ञानानन्द— सर्वज्ञदेवका आनन्द विशिष्ट आनन्द नहीं है और उनका ज्ञान भी विशिष्ट ज्ञान नहीं है, विलक्षण ज्ञान जरूर है। जैसा कि साधारण समस्त संसारी जीवोंमें नहीं पाया जाता ऐसा अलौकिक विलक्षण ज्ञान है किन्तु उस ज्ञानको हम विशिष्ट यों कहते कि जिस ज्ञानमें चढ़ाव उतार नहीं है, जिस ज्ञानमें विषयकी बदल नहीं है, अब कुछ जाना फिर कुछ जाना, जिस ज्ञानमें परिवर्तन भी नहीं चलते ऐसा एकस्वरूपज्ञान सामान्यज्ञान है। और, यही कारण है कि केवलज्ञान जैसी परिणतिकी ज्ञानस्वभावमें मग्नता हो जाती है। हम लोगोंका स्वभाव है एकस्वरूप। और, ज्ञान चल रहा है नानारूप। हमारे ज्ञानस्वभावमें जो एक रसता और साम्य है, हमारी वर्तमान ज्ञानपरिणतिमें एकरसता और साम्य नहीं है तो हम लोगोंके ज्ञान और आनन्द तो विशिष्ट होते हैं, पर भगवानका ज्ञान और आनंद अविशिष्ट है। अविशिष्ट ज्ञान और आनन्दमें निराकुलता है और विशिष्टज्ञान और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आनन्दमें क्षोभ भरा हुआ है। लोकमें विशेषका महत्त्व है, पर अध्यात्ममें सामान्यका महत्त्व है। किसी मनुष्यका परिचय देनेके लिए लोग यदि उसका महत्त्व न आने देना चाहें तो कहते—अजी यह तो साधारण मनुष्य है, और किसीका महत्त्व बढ़ाना हो तो कहते कि साहब यह तो हमारे गांवके विशिष्ट पुरुष हैं। लोकमें विशिष्टताका महत्त्व बढ़ाया जाता है, पर अध्यात्मक्षेत्रमें कुछ भी विशिष्टताकी बात बनाये तो वह तो वह तरङ्ग है, औपाधिक है, स्वभावके प्रतिकूल है, एक फिट होने वाली बात नहीं, मग्नताके प्रतिकूल है अतएव सब विशिष्ट परिणतियाँ महत्त्वहीन हैं।

विशिष्ट प्रमासे प्रमाणत्वकी व्यवस्था— यहां दार्शनिक क्षेत्रमें प्रमाणकी व्यवस्था की जा रही है। उत्सर्ग रूपमें यह बात रखी है कि जो अज्ञात अर्थका ज्ञान करे वह ज्ञान प्रमाण है पर इससे सर्वथा अज्ञात न ले लेना। अज्ञात अर्थका ज्ञान करना भी प्रमाण है, और ज्ञात अर्थमें, जाने हुए अर्थमें, कुछ विशेष ज्ञान करना सो भी प्रमाण है और जाना हुआ अर्थ यदि भूल जायें, उस बीच संशय आ जाय, विपर्यय आ जाय या कुछ अनध्यवसाय हो जाय तो उसका भी ज्ञान करना प्रमाणभूत है।

अपूर्वार्थके अज्ञातैकान्तवादमें अप्रमाणसे प्रमाणव्यवस्थाकी आपत्ति—एकान्तसें यदि अनधिगत अर्थको जानने वाले ज्ञानको ही प्रमाण माना जाय तो यह बात सिद्ध यों न होगी कि देखिये किसी भी पदार्थका हमने ज्ञान किया तो यह ज्ञान किया तो यह ज्ञान हमारा प्रमाणभूत है ऐसा निश्चय होता है सम्वादसे। सम्वादका अर्थ है कि उस ज्ञानकी मजबूतीके लिए जो एक और नई झलक बनी जिसमें विसम्वाद हट गया उस सम्वाद ज्ञानसे निश्चय होता है कि यह ज्ञान सही है, वहाँ अपने आपके लिए सो जिस समय ज्ञान हुआ उस ही समय वह ज्ञान सम्वाद कर लेता, निर्णय रख लेता कि मैं सही हूं। पर जब कोई विसम्वादकी कोटिमें रख दे कि तुम्हारा ज्ञान सही है क्या, जरा निर्णय करो तो उसके निर्णयके लिए दूसरा ज्ञान बनता कि नहीं बनता। तो प्रमाणकी प्रमाणता द्वितीय सम्वादी ज्ञानसे होती है। तो द्वितीय जो निर्णय करने वाला ज्ञान बना, उसने किसके बारेमें निर्णय किया? ज्ञात पदार्थके बारेमें, और ज्ञात पदार्थके बारेमें निर्णय करने वालेको तुम सर्वथा अप्रमाण कर रहे तो इसका अर्थ यह हुआ कि प्रमाणकी प्रमाणताका निर्णय करने वाला अप्रमाण ज्ञान है। तो भला अप्रमाणसे प्रमाणका कोई निर्णय भी बन सकता है? कितनी सूक्ष्मता के साथ बात रखी गई है। इससे यह हल न करें कि सर्वथा अज्ञात अर्थको हो जानने वाला ज्ञान प्रमाण है। प्रमाणका यह अर्थ रखिये, स्वरूप बनाइये कि विशिष्ट अर्थका जो जानन करे वह प्रमाण है। चाहे अज्ञात अर्थमें कुछ विशेष मर्मको जनाया हो चाहे ज्ञात अर्थमें कुछ विशेष मर्मको जनाया हो, विशेष अर्थको जो जाने उसे प्रमाण कहते हैं।

आत्मलाभहेतुतासे सम्यग्ज्ञानकी व्यवस्थाकी एक दृष्टि—यहाँ तक यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बात कही गई है कि देखिये प्रमाण करना क्यों जरूरी है ? सच्चा ज्ञान बनानेसे लाभ क्या होता है ? वह लाभ जहाँ जहाँ मिले उससे तो निश्चय करिये कि यह सम्यग्ज्ञान है। प्रयोजनीभूत ज्ञान है। सम्यक् जो निज आत्मा हो उसका सम्यक् करनेके लिये भला करनेके लिये जो ज्ञान बनता है वह सम्यक् ज्ञान है, इस तरह भी अर्थ कर दें तो कोई अत्युक्ति न होगी। इसमें थोड़ा यह तो कहा जा सकता कि लोक व्यवहारमें तो लाभ और किस्मके भी माने जाते और मोक्ष मार्गमें लाभ और किस्मके माने जाते। तो भाई जहाँ सुखप्राप्ति होती हो और जिस ढङ्गसे होती हो उस ढङ्गके लिए वहाँ वहाँ वे सब ज्ञान प्रमाण हैं।

सत्यके विशिष्ट कक्षोंका एक उदाहरण—देखिये जैसे सत्यके बारेमें चार जगह वर्णन किया है, सत्य महाव्रत, भाषासमिति, उत्तम सत्य और वचन गुप्ति, इन चारका प्रयोजन सत्यसे है, और इन चारमें सत्यकी प्रतिष्ठा बढ़ती जाती है। महाव्रतसे भाषासमितिमें, उससे बढ़कर उत्तम सत्यमें, उससे बढ़कर वचनगुप्तिमें, सत्य महाव्रतमें सत्य बोलना है इतना नियंत्रण है। चाहे वहाँ किसी भी बारेमें बोला जाय, सत्य महाव्रतका उद्देश्य नहीं मिटा, पर भाषा समितिमें नियंत्रण और बढ़ गया कि आप सत्य महाव्रतके अन्तर्गत सत्य तो बोलिये किन्तु परिमित वचनोंसे बोलिये और प्रिय वचनोंसे बोलिये और हितके प्रसङ्गमें बोलिये। उत्तम सत्यमें अब और नियंत्रण बढ़ा कि केवल आत्महितमें ही बोलिये। जितना मात्र आत्मासे सम्बन्ध हो उतना बोलिये, उत्तम सत्यका यह नियंत्रण और बढ़ गया। और वचनगुप्तिमें समस्त नियंत्रण हो गया कि बोलिये ही नहीं, मौनपूर्वक रहिये।

सम्यक् असम्यक्की किन्हीं स्थितियोंमें उपेक्षाकृत भी व्यवस्था—जैसे चार प्रकारोंमें सत्यके दर्जे बढ़ गए और इन दर्जोंके मुकाबलेमें कोई गृहस्थ अपना व्यापार दूकान बिल्कुल सत्य बोलकर करता है, एक दाम बोलेगा वही लिखा पढ़ी करेगा जो गृहस्थीमें सत्य कहा जाता है। पूर्ण सत्यके साथ अपना व्यापार करता है लेकिन वे आत्माके संसर्गी वचन नहीं हैं। वे लोक व्यवहार और आजीविकाके वचन हैं अतएव असत्य हैं। सत्य बोलकर भी व्यापारके वचन असत्य कहलाते हैं। जहाँ आत्मलाभ होता हो बस उन ज्ञानको ज्ञान कहा है और प्रमाणभूत कहा है। ऐसे ज्ञानके फलमें ४ बातें ही हुआ करती हैं अज्ञानका विनाश हो जाना, यह तो लाजमी रहता है। इसके अतिरिक्त फिर तीन बातें ऐसी हैं कि किसीके तीन भी हो जायें, किसीके दो भी हो जायें और किसी के एक भी रहे। वह है हितकी प्राप्ति और अहितका परिहार और उपेक्षा भाव, ये चार परिपाक सम्यग्ज्ञानके होते हैं इसको दृष्टिमें रखतेहुए प्रमाणके स्वरूपकी यहाँ व्यवस्था की जारही है और यह समर्थन किया जा रहा है कि जो अपूर्व अर्थ का परिज्ञान करे वह ज्ञान प्रमाण होता है।

अपूर्व अर्थकी दृष्टान्तपूर्वक व्याख्या—प्रकरण यह चल रहा है कि अपूर्व

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अर्थका निश्चय करने वाला ज्ञान प्रमाण तो है, किन्तु इसका सर्वथा अपूर्व अर्थका निश्चय करने वाला यह अर्थ न लगाना चाहिए। जाना हुआ भी पदार्थ बीचमें संशय, बिपर्यय, अनध्यवसाय हो जानेसे न जाने हुएकी तरह हो जाता है और जाने हुए पदार्थमें भी कुछ और विशेषता मर्मकी जानकारी बननेपर वह भी अपूर्व अर्थ कहलाता है इस कारण सर्वथा अज्ञात करना यह इसका भाव नहीं है। और, भी देखिये जैसे पहिले वृक्षको जाना फिर थोड़ी देर बाद जाना कि यह बड़का वृक्ष है तो यह वड़ है इस तरहका ज्ञान ज्ञात अर्थमें हुआ या अज्ञात अर्थमें ? सर्वथा एकान्तवादी तो यह कह रहे हैं कि वह ज्ञात अर्थमें हो गया तो क्या वह अप्रमाण हैं। किसीने पहिले अज्ञातदशाके अनन्तर ही वृक्षमें जाना जब भी वह प्रमाण ज्ञान है। पश्चात् उस ज्ञात वृक्षमें बटवृक्ष है ऐसा जाना तब भी वह प्रमाण है। वृक्ष है यह तो सामान्य ज्ञान हुआ और बटवृक्ष है यह विशेष ज्ञान हुआ।

सामान्य विशेषका तादात्म्य होनेसे अपूर्वार्थ विशेषणकी व्यापकक्षेत्रता —और भी सोचिये वृक्षमें और बटमें सामान्य विशेषका परस्पर तादात्म्य है या नहीं कि वृक्ष अलग पड़ा है और बट अलग खड़ा है ? उस ही पदार्थमें सामान्य ज्ञान तो बना वृक्ष और विशेषज्ञान बना यह बट वृक्ष है। तो सामान्य और विशेषका तादात्म्य हुआ ना ? तो जब सामान्य विशेषका तादात्म्य हुआ तो सामान्य जान लिया गया था पहिले। तो ज्ञान अर्थका ही ज्ञान अर्थका निश्चय करनेको ही प्रमाण कहते हैं; यह बात युक्त नहीं बैठती। उस ही वृक्षमें पहिले यह जान लिया कि यह वृक्ष है तो पूर्व ज्ञानमें तो वृक्षका अस्तित्त्व आया और पश्चात् जाना कि यह बट है तो उत्तर ज्ञानमें बटका अस्तित्त्व आया तो इस समयका अस्तित्त्व याने बटका अस्तित्व पूर्वके अस्तित्वसे भिन्न है या अभिन्न है भिन्न तो नहीं है, उस ही वृक्षमें वह बटपना है और वह पहिले जान लिया था तो इससे यह निश्चय करिये कि चाहे वस्तु पहिले जान ली हो अथवा न जान ली हो उसमें किसी विशेष तत्त्वका, पदार्थका परिज्ञान हो तो वह अपूर्व अर्थका ही परिज्ञान है। यदि ऐसा कहो कि कथंचित अज्ञात हो गया, था तो वह ज्ञात ही मगर किसी दृष्टिसे अज्ञात बन गया तो यही तो स्याद्वादमत है। वह ज्ञात भी है और अज्ञात भी है। सामान्यरूपसे जाना हुआ है, विशेषरूपसे नहीं जाना हुआ है तो अपूर्व अर्थका यह भाव समझना कि कोई विशेष जानकारी बने उसका नाम प्रमाण हैं।

निश्चयान्तरोंकी भी सप्रयोजनता – भैया ! इस प्रसंगमें यह भी नहीं कह सकते कि जो पदार्थ एक बार निश्चित हो चुका उसमें फिर अन्य निश्चय करनेसे क्या प्रयोजन है अर्थात् जो एक बार जान लिया गया फिर उसका और और निश्चय करनेसे क्या लाभ है, यह तो एक मूर्खता भरी बात बनेगी, यह भी नहीं कह सकते क्योंकि किसी पदार्थका दुबारा निश्चय करनेपर दुख आदिककी साधकता बनती है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जैसे पहिले तो वस्तुमात्रका निश्चय किया और फिर बादमें निश्चय और करते हैं तो यह सुखका साधन है या दुःखका साधन है इस प्रकारका और विशेष निश्चय बनता है और इस निश्चयके बाद फिर यदि दुःखका कारणभूत है तो उसको छोड़ दिया है और सुखका साधनभूत है तो उसे ग्रहणकर लिया जाता है। प्रमाणके स्वरूपमें यह बात बताई जा रही है कि कुछ नवीन मर्मका ज्ञान हो वह प्रमाण है और उस नवीन मर्मके ज्ञानके साथ हित प्राप्ति अहित परिहार ये लगे हुए हैं और इसीसे वह सुखका अथवा दुःखका साधन है यह भी निर्णय बन जाता है। तो किसी पदार्थको बारबार जानना कोई दोष नहीं है लेकिन कुछ न कुछ विशेषताके लेकर जाननेसे यहाँ प्रमाणता आती। सुखका साधन जानकर सुखमें प्रवृत्त हुई, दुःखका साधन जान कर उसका परिहार हुआ तो बारबार समझना, निश्चय करना यह प्रयोजन नहीं है।

निश्चयान्तरोंकी मान्यता बिना विपर्ययज्ञानसे भी हिताहितप्राप्ति-परिहारका प्रसङ्ग—अन्य अन्य निश्चय न मानेंगे तो विपर्ययज्ञानके द्वारा भी इष्टका उपादान और अनिष्टका परिहार करनेका प्रसङ्ग आ जायगा। जैसे पड़ी तो थी सीप जान लिया चाँदी, एक बार जान लिया दुबारा जाननेकी जरूरत नहीं समझते तो जाननेपर फिर चाँदी उठा ली तो क्या चाँदी मिल जायगी ? तो विपर्ययज्ञानसे भी इष्टका उपादान और अनिष्टके त्याग बन जानेका प्रसङ्ग आ जायगा। तो अपूर्व अर्थसे मतलब है कोई नये तत्त्वकी झलक बनना, नई पद्धतिसे जानकारी बनना। इष्टका ग्रहण अनिष्टका परिहार हो जाय यह सब अपूर्व अर्थ ही कहलाता है। और, देखिये यह तो जानने वाले लोगोंकी विशेषता है। किसीको एकबारके देखनेमें ही पदार्थका पूर्ण पुष्ट ज्ञान हो जाता है और किसीको उस पदार्थके जाननेमें अनेक ज्ञान जगते हैं तब उसका निश्चय होता है। तो अनेक ज्ञान जगें इससे कहीं भी सब ज्ञान अप्रमाण न बन जायेंगे। उन सब ज्ञानोंमें उत्तरोत्तर कुछ विशेषताकी जानकारी चल रही है।

एक पदार्थमें उत्तरोत्तर अनेक ज्ञानोंकी प्रवृत्ति—जैसे किसी पर्वतमें धुवाँ उठता है तो उसे देखकर जाना कि यह अग्नि है। तो सर्वप्रथम तो एक व्याप्ति ज्ञानमें इस तरह अग्निका स्मरण बनता है कि देखो जहाँ धुवाँ होता है वहाँ अग्नि पायी जाती है और जहाँ अग्नि है वहाँ धुवाँ पाया जाता है, अग्नि न हो तो धुवां नहीं होता, धुवां नहीं हो तो अग्नि नहीं होती। इस तरहसे अग्निका एक सामान्य रूपसे परिज्ञान बना ना, फिर उसका इस पर्वतमें अग्नि है ऐसे किसी क्षेत्रका सम्बन्ध जुड़ा कर अग्निका ज्ञान बना और फिर प्रचुर मात्रामें है या कम रूपमें है इस प्रकारके आकारको लेकर ज्ञान बना और जब आगे जाकर वहाँ अग्निको देख लिया तो प्रत्यक्ष आकारमें वहाँ अग्निका ज्ञान बना। एक ही पदार्थमें जो उत्तरोत्तर विशेष पद्धति लेकर ज्ञान बनता गया वह ज्ञान प्रमाण है। अतः जो सर्वथा अपूर्व अर्थका विज्ञान है वह प्रमाण है ऐसा कहना युक्त नहीं है। यद्यपि प्रमाणभूत ज्ञान अपूर्व अर्थ सम्बन्धी होता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है, बाधासे रहित होता है, लेकिन उसमें सर्वथा एकान्तवाद कर लीजिए कि जो बिल्कुल ही अज्ञान हो अब तक न जाना गया हो, उसका ज्ञान प्रमाणभूत है ऐसा एकान्त न कर सकेंगे।

प्रत्यभिज्ञानमें ज्ञात अर्थका विज्ञान—और भी देखिये एक ज्ञान होता है प्रत्यभिज्ञान। प्रत्यक्षसे कुछ चीज देखी और उसके सम्बन्धमें यह ख्याल आया कि वह वही चीज है जिसे हमने कल निरखा था या अमुक देशमें देखा था तो यहाँ जो यह प्रत्यभिज्ञान हुआ यह तो जाने हुए पदार्थके बारेमें ही ज्ञान हुआ तो प्रत्यभिज्ञान अप्रमाण हो जाना चाहिए। किसी मनुष्यको आपने कलकत्तामें देखा था, आज वह सामने आया तो उसको निरखकर यह ज्ञान बनता कि हमने उसे कलकत्तामें निरखा था तो यह ज्ञान सही ही तो है। लेकिन जाने हुए पदार्थका ही तो ज्ञान किया ना। और तुम यह एकान्त कर रहे हो कि जाने हुए पदार्थका ज्ञान करना प्रमाण नहीं है। जो न जाना हो उसे जानना प्रमाण है। जब प्रत्यभिज्ञान अप्रमाण बन बैठेगा तो किसी पदार्थको तुम नित्य नहीं सिद्ध कर सकते। आत्मा नित्य है यह कब सिद्ध कर सकेंगे? आत्मा यह वही है जो पहिलेसे था ऐसा वर्तमान अवस्थामें और पूर्व अवस्थावोंमें एकत्वका ज्ञान बनेगा तभी तो नित्यता सिद्ध होगी। यह सर्वथा अपूर्व अर्थको जानने वाले ज्ञानको प्रमाण कहने वाले नित्यवादी सिद्धान्तके हैं तो सर्वथा अज्ञात अर्थको प्रमाण माननेपर फिर नित्यताकी सिद्धि नहीं बन सकती। तो नित्य तो तब माना जायगा जब यह ध्यान आये कि यह पहिलेसे चला आया आगे तक रहेगा तो पूर्व और उत्तर अवस्थावोंमें रहने वाले एकत्वका परिज्ञान होनेसे नित्य समझा था। तब ज्ञात अर्थकी जानकारी भी प्रमाण है यह भी तो सिद्ध हुआ और इसमें अपूर्व अर्थ भी बसा हुआ है और ज्ञात अर्थको भी जाना है।

एकत्व सादृश्य आदि प्रत्यभिज्ञानोंमें ज्ञात अर्थके ज्ञानकी प्रमाणता—कलकत्तामें निरखा था जिस पुरुषको उसका स्मरण हुआ यही हुआ एक पूर्व अवस्था का बोध और वर्तमानमें निरख रहे हैं कि यह है यह हुआ प्रत्यक्ष। अब इन दोनों अवस्थावोंमें कुछ एकत्वका ज्ञान किया जा रहा यह वही है, यह हुआ अपूर्व अर्थ। ज्ञात भी अर्थ हुआ किन्तु उसके सम्बन्धमें अपूर्व अर्थका ज्ञान हो तो वह प्रमाण होता ही है। सर्वथा अपूर्व अर्थकी बात युक्त नहीं बैठ सकती। प्रत्यभिज्ञान तो अनुभूत अर्थ को ग्रहण करता है। जैसे जङ्गलमें जा रहे हैं वहाँ रोझ देखा, रोझको देखकर यह ज्ञान किया कि यह तो गायके समान जानवर है तो यहां यह रोझ है यह जाना और गायके समान है यह जाना तो इसमें प्रत्यक्षमें आया हुआ है रोझ और उसमें उस स्मरण किये हुए गायकी सदृशता बैठायी गयी है। तो इसमें रोझको एक बार देख लिया तब तो वह ज्ञात हो गया ना और गायको पहिले देखा ही था वह भी ज्ञात है तो ज्ञात अर्थको जाननेपर भी यह उसके समान है ऐसा जो परिज्ञान है वह तो बराबर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रमाणभूत है । उसमें अपूर्व अर्थ भरा है प्रत्यक्षमें स्मृतिकीका सादृश्य ।

प्रत्यक्ष और स्मरणसे ज्ञात अर्थमें ही प्रत्यभिज्ञानकी उद्भूति—अनुभूत अर्थको ही ग्रहण करता है यह प्रत्यभिज्ञान क्योंकि जो स्मरणसे और प्रत्यक्षसे जाना गया है उस ही पदार्थमें प्रत्ययभिज्ञानकी प्रवृत्ति होती है । न प्रत्यक्षमें आया हो न स्मरणमें आया हो वहाँ तो प्रत्यभिज्ञान नहीं बनता क्योंकि बिना प्रत्यक्षके, बिना स्मरणके यदि प्रत्यभिज्ञान बन जाय तो जैसे हम यहाँके भाईमें यह ज्ञान करते हैं कि यह आदमी वह है जिसे कलकत्तामें निरखा था तो इसी प्रकार मेरु आदिकमें भी प्रत्यभिज्ञान करलें जिसका न कभी प्रत्यक्ष हुआ, न स्मरण हुआ उसको भी प्रत्यभिज्ञानसे जान लें । यों अटपट अनेक प्रत्यभिज्ञान होने लगेंगे । इस कारण यह ठीक ही है कि प्रत्यभिज्ञान अनुभूतमें, जाने हुए पदार्थमें ही होता है ।

प्रत्यभिज्ञानके विषयको अज्ञात बतानेका प्रयास और निराकरण—शायद यह कहो कि पूर्व अवस्था और वर्तमान अवस्थामें रहने वाला जो एकत्व है उस एकत्वको जाना प्रत्यभिज्ञानने । जाने हुएको नहीं जाना, जानी हुई तो प्रथम अवस्था है और उत्तर अवस्था है, प्रत्यभिज्ञानने न तो प्रथम अवस्थाको जाना और न उत्तर अवस्थाको जाना किन्तु उन दोनों अवस्थावोंमें जो एकत्व है उसको जाना । इस कारणसे यहाँ यह दोष न लग सकेगा कि ज्ञातको जाना । अज्ञातको ही नहीं जाना गया है । तो उत्तरमें पूछा जा रहा है कि पूर्व अवस्था और उत्तर अवस्थामें रहने वाला जो एकत्व है, वह एकत्व उन दोनों अवस्थावोंसे न्यारा है अथवा अभिन्न है ? यदि कहें न्यारा है तो यह बात तो अयुक्त है । कहाँ न्यारा है ? पूर्व और उत्तर अवस्थाओंसे न्यारे किसी एकत्वमें प्रत्यभिज्ञानकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती क्योंकि प्रत्यभिज्ञान तो प्रत्यक्ष और स्मरणको जाने गए पदार्थके सम्बन्धमें ही हो रहा है । अन्यथा याने यदि पूर्व और उत्तर अवस्थासे जुदा कहीं एकत्व है और उसका प्रत्यभिज्ञान किया तो किसी अन्य पदार्थमें क्यों नहीं एकत्व जोड़ दिया ? यह मनुष्य वही है जिसे कलकत्तामें देखा था ऐसा जो एकत्व जोड़ा जा रहा है वह एकत्व उस कलकत्तामें दृष्ट अवस्थासे जुदा है और वर्तमानमें देखी गई अवस्थासे भी जुदा है तो कोई तीसरा चौथा आदमी है वह भी उन अवस्थावोंसे जुदा है तो अन्य मनुष्यमें क्यों न एकत्व जोड़ दिया, उसमें ही क्यों एकत्व जाना जा रहा जिसे पहिले देखा था और अब देखा जा रहा है, इस तरह एकत्व भिन्न नहीं है । तो यह मानना होगा कि वह एकत्व अभिन्न है । यदि प्रत्यभिज्ञानने ज्ञातको जाना यह सिद्ध हो गया तब दोनों अवस्थावोंसे वह एकत्व कथंचित् अभेद सिद्ध हो गया तो यह बात आयगी कि अनुभूत अर्थको ग्रहण किया प्रत्यभिज्ञानने । अतः यह बात नहीं कहना था कि जो सर्वथा अज्ञात हो उस ही पदार्थको जानना प्रमाण है न ज्ञात हो फिर भी उसमें कुछ नवीन–नवीन बात समझी जाय अथवा विशेष सुखका साधन बने इस शैलीसे समझा जाय तो वह सब ज्ञान प्रमाण है ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सर्वथा अज्ञात अर्थके ज्ञानको ही प्रमाण माननेपर अनुमान ज्ञानकी अप्रमाणताका प्रसङ्ग—यदि सर्वथा अज्ञात अर्थको ही जाननेसे प्रमाणता मानोगे तो जितने अनुमान हैं वे सब अप्रमाण बन जायेंगे, क्योंकि अनुमान जितने बनते हैं वे व्याप्तिज्ञानपूर्वक बनते हैं। जैसे जाना कि इस पर्वतमें अग्नि है धुवाँ होनेसे, यह बात तब जानी गयी जब चित्तमें यह निर्णय बना है कि जहाँ अग्नि नहीं होती वहाँ धुवां नहीं होता और जहाँ धुवाँ है वहाँ अग्नि होती है। व्याप्तिज्ञानके बाद अनुमान बन सकेगा तो उस अग्निका ज्ञान पहिले भी तो तर्कके रूपमें कर लिया गया था। अब इस अग्निको अनुमान ज्ञानने जाना तो ज्ञात अर्थका ज्ञान बन गया। तो क्या वह अप्रमाण बन बैठेगा ? नहीं, ज्ञान अर्थ भी जाननेसे अप्रमाण नहीं है किन्तु संशय, विपर्यय या अनध्यवसाय रूपमें पदार्थका जान लेना यह अप्रमाण है अथवा जिसमें कुछ फल नहीं है, उन्मत्त पुरुषोंकी भांति एक जाने हुए पदार्थको जितना जाना था उतने रूपमें निरन्तर रटना धारावाही ज्ञान होना यह अप्रमाण है, तो इस प्रकार यह सिद्ध किया गया कि जो स्वका और अपूर्व अर्थका निश्चय कराये वह प्रमाण होता है।

सर्वथा अपूर्वार्थके एकान्तकी अनुपपत्ति—इस सम्बन्धमें यदि सर्वथा अपूर्ववादी यह कहे कि प्रत्यभिज्ञानसे शब्द और आत्माकी नित्यता तो जानी गई है वहाँ यद्यपि ज्ञात अर्थको जाना है तिसपर भी चूँकि बीचमें संशय आ गया था, विपर्यय आ गया था अथवा कोई वादविवाद कर रहा था, किसीको समझाना था इस कारणसे वह प्रत्यभिज्ञान उन संशय आदिकका व्यवच्छेद करनेके लिए हुआ अतएव प्रमाण है। तो कहते हैं कि यह बात तो स्याद्वादमें है, एकान्तका त्याग तो हो ही गया। जो सर्वथा अज्ञात हो, कभी न जाना हो वह प्रमाण है यह बात तो नहीं बन सकती। ज्ञातका ज्ञान हो अथवा अज्ञातका ज्ञान हो जिसमें कोई समारोप बसा हो वह अप्रमाण है। इस प्रत्यभिज्ञानको यदि प्रमाण सिद्ध करना चाहो तो इस एकान्तका त्याग करना होगा कि अज्ञात अर्थका निश्चय करने वाला ज्ञान ही प्रमाण है, क्योंकि स्मरण उसी चीजका होता है, जो जाना हुआ है और तुम ज्ञातज्ञानको अप्रमाण कहते हो। जिसे कभी जाना नहीं था और स्मरण करलें, यों किसी असत् पदार्थका भी स्मरण होता है क्या ? तो सर्वथा अज्ञात पदार्थका तो स्मरण नहीं होता ना ? ज्ञात का होता। तो स्मरण या तो अप्रमाण बन बैठेगा या ज्ञात अर्थका ज्ञान करना भी प्रमाण है यह मानना पड़ेगा जो कि मानना ही ठीक है।

अधिगत अर्थके अधिगन्तास्मरण ज्ञानके प्रामाण्यकी सिद्धि—भैया ! स्मृति अप्रमाण नहीं है क्योंकि स्मृतिको अप्रमाण माननेसे तो सब लोक व्यवस्था मिट जायगी। यदि स्मरण अप्रमाण हो जायगा तो रिस्तेदारी, व्यापार आदिके सभी काम कैसे चल पायेंगे। आप अभी यहाँ बैठे हैं। अभी अपने घर जायेंगे, वहाँ आपको यह स्मरण है कि यह मेरा ही घर है, और आपने स्मरणको मान रखा है अप्रमाण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो फिर यह घरमें रहनेका काम कैसे चल पायगा ? स्मरणको अप्रमाण माननेसे कोई बातचीत नहीं चल सकी। बातचीतके प्रसंगमें भी शब्दों तक के स्मरण रहते हैं, जैसे कोई विवरणकी बात कही गई, वाक्य बोल रहे हैं तो यद्यपि शब्द कुछ जल्दी बोल दिये जायें और उसमें यह विकल्प भी न करें कि इस शब्दको बोला, लेकिन स्मरण बराबर बनता रहता है कि इस शब्दके बाद इस शब्दको बोला था, और अब यह बोलना है इस प्रकारका स्मरण भी भाषण करने वालेको रखना पड़ता है। नहीं तो वह कुछ बोल ही नहीं सकता, उससे कुछ वाक्य ही नहीं बनेंगे। तो इस स्मरण ज्ञानको न माननेपर बातचीत खाना पीना, घरमें रहना, व्यापार करना ये सभी बातें भंग हो जायेंगी। और स्मरणमें ज्ञात अर्थका ही ज्ञान किया गया, इससे यह बात तो नहीं रही कि ज्ञात अर्थको जानना अप्रमाण हुआ करता है। स्मरण ज्ञान ज्ञात अर्थको ही जानता।

प्रमाणभूत तर्क ज्ञानमें भी अधिगत अर्थका अधिगन्तृत्व—इसी प्रकार तर्क ज्ञान भी ग्रहीत अर्थका ज्ञान करने वाला है। जैसे यहाँ बैठे हुए ही यह व्याप्ति बनी रहती है कि जहाँ जहाँ धुवाँ होता है वहाँ वहाँ अग्नि हुआ करती है। जहाँ अग्नि नहीं होती वहाँ धुवाँ भी नहीं होता। यह जो तर्क उठा रहे हैं व्याप्ति बन रही है यह तब बन रही है जब पहिलेसे हमें ज्ञान है कि धुवाँ यह कहलाता और अग्नि यह कहलाती जिस धुवाँ और अग्निको हमने पहिले देखा था, पहिले जाना था, उसी दृष्ट और ज्ञात अर्थकी ही तो व्याप्ति बनायी जा रही है। सो ज्ञात अर्थका ज्ञान किया जाना यदि अप्रमाण ही मान लिया जाय तो तर्क ज्ञान भी नहीं बन सकता क्योंकि ये सब ज्ञान भी प्रत्यभिज्ञानकी तरह ज्ञात अर्थको जानते हैं। और साथ ही इसमें कुछ विशेष परिज्ञान ये सब बराबर बसे हुए हैं इस कारण अपूर्व अर्थ वे कहलाते हैं। धुवां और अग्निको पहिले नाना स्थलपर जाना, अब यहाँ उसकी अविनाभावतारूपसे जानते जा रहा है, यह न हो तो ऐसा नहीं होता, ऐसी अविनाभावरूपता से जाननेपर वह अपूर्व अर्थ भी बन गया, तो ज्ञात अर्थकी परिस्थिति भी अपूर्व अर्थमें होती है और अज्ञातअर्थमें भी अपूर्वअर्थता होती है।

समारोपविरोधी ज्ञानमें प्रमाणत्वकी व्यवस्था—केवल अज्ञान अर्थको ही अपूर्व अर्थ न समझिये। और, यदि सर्वथा ही अज्ञात अर्थको प्रमाण मानोगे तो जिसको जन्मसे तिमिर रोग है उसको दो चन्द्र दिखते हैं तो दो चन्द्रमाओंका जो ज्ञान है उसके लिए तो अपूर्व अर्थ है सो वह भी प्रमाण बन जायगा, तो सर्वथा अपूर्वअर्थको जान लेना यह प्रमाण नहीं है किन्तु उसके संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय आदिक दोषोंसे रहित रूपसे परिज्ञान करना सो प्रमाणभूत होता है और ऐसा निर्णय करना, निश्चय करना प्रथम तो इन अपूर्वार्थके पक्षकारोंके मतमें कठिन है क्योंकि यह परोक्ष ज्ञानवादी है, सम्भव ही नहीं होता। जो ज्ञान परोक्ष भी हो, वह ज्ञान मेरे लिए

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रत्यक्ष है। परोक्ष तो यों कहलाता है ज्ञान कि पर इन्द्रिय और पदार्थ आदिकका आश्रय करके निमित्त करके वह ज्ञान उत्पन्न होता है तो बाह्य दृष्टिकी अपेक्षा तो ज्ञान परोक्ष होता है पर जो भी ज्ञान होता है वह जानन है. ज्ञान है, जानने वालेके ज्ञानमें तो स्पष्ट है और ज्ञाताके लिए परोक्ष नहीं रहता है। यों यह समझना चाहिए कि वही ज्ञान प्रमाण होता है जिस ज्ञानमें न संशय रहता न विपर्यय होता और न अनध्यवसाय रहता, यथार्थ निर्णय खता है वह ज्ञान प्रमाण है और वह स्व ओर अपूर्व अर्थका व्यवसायात्मक होता ही है, इस प्रकार प्रमाणके स्वरूपकी सिद्धि की जा रही है। प्रमाणका स्वरूप जाने बिना हम किसी सिद्धान्तको सिद्ध नहीं कर सकते और किसी अन्य सिद्धान्तको हम दूर नहीं कर सकते। इसी कारण इस ग्रन्थमें प्रमाणके स्वरूपकी परोक्षा मुख्यतया की जा रही है।

सर्वथा अपूर्व अर्थके ज्ञानकी प्रमाणताका सिद्धान्त - सर्वथा अपूर्व अर्थके ज्ञानको ही प्रमाण मानने वाले दार्शनिक अपना सिद्धान्त यों रख रहे है कि ऐसे अपूर्व अर्थका विज्ञान जिसमें बाधा न आये जो निर्दोष कारणोंसे उत्पन्न किया गया हो और लोगोंसे सम्मत है, सब लोग जिसे मान जायें ऐसे अपूर्व अर्थका ज्ञान होना प्रमाण है। देखिये सुननेमें कुछ बुरा तो नहीं लग रहा। ठीक ही कह रहें कि जिसमें बाधा न आये, बाधाका जहाँ अभाव हो और दोषरहित कारणोंसे रचा हो और सब लोग जिसे मान जायें इन तीन विशेषणों करके युक्त फिर जो अपूर्व अर्थका विज्ञान है वह प्रमाण है। बात सही होनेपर भी एक सर्वथा शब्द लगा देनेसे वे सब विशेषण भी प्रश्न करने योग्य बन जाते हैं सर्वथा अज्ञात अर्थका ज्ञान करना प्रमाण है और इसी विषय पर बात चल रही है। पीछे इन तीन विशेषणोंका भी विचार चलेगा। सर्वथा अपूर्व अर्थको मानने वालोंके यहाँ ये तीन विशेषण भी सही न बन पायेंगे।

द्विचन्द्रादि प्रत्ययकी प्रमाणताके प्रसंगके निवारणार्थ पूर्वपक्षकार द्वारा बाधाविरह विशेषणकी पुष्टि —सर्वथा अपूर्व अर्थके विज्ञानमें यह आपत्ति प्रसक्त की गई थी कि सर्वथा अज्ञात अर्थको प्रमाण माननेपर जिस किसी पुरुषको दो चन्द्र दिखते हैं किसी दोषके कारण तो दो चन्द्रका दिख जाना भी प्रमाण बन जायगा। इस आपत्तिके निवारणके लिए पूर्वपक्षकारने बाधाविरह शब्द दिया हैं। जिसमें बाधा न आये वह ज्ञान प्रमाण है, पर दो चन्द्रका दिखना इस ज्ञानमें तो बाधा आती है अतएव यह प्रमाण नहीं है। जहाँ बाधाका विरह हो वह ज्ञान प्रमाण होता है और यहाँ दो चन्द्र तो दीखे मगर दूसरेने तो यों समझा नहीं है और वह भी अपनी आंखों से और अधिक सम्हाल कर निहारे तो वह भी जान जायगा कि दो चन्द्र नहीं हैं एक है। नेत्रके रोगकी बात तो दूर जाने दो। कभी–कभी हम आपको भी दो चन्द्र दिख जाते हैं। कोई ढङ्ग देखनेका ऐसा बैंठ जाता है कि दो चन्द्र दिख जाते हैं लेकिन बाद में उस ज्ञानमें बाधा आ जाती है। ये दो चन्द्र नहीं है ऐसा जो दिखा है वह मिथ्या

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। तो जहां बाधा विरह हो वह प्रमाण है। अतएव अपूर्व अर्थके ज्ञानकी प्रमाणतामें दोष नहीं दे सकते ऐसा पूर्वपक्षकारोंने अपना बचाव किया।

सर्वथा अपूर्वार्थवादियोंके तत्कालभावी बाधाविरहकी अयुक्तता— अब बाधाविरहके सम्बन्धमें सर्वथा अपूर्वार्थवादियोंके प्रति आचार्यदेव कह रहे हैं, बाधाविरहका ही विश्लेषण कर रहे हैं। बाधाका जो विरह होता है वह तत्कालभावी है या उत्तरकालभावी है। जिस समयमें दो चन्द्र दीखे उसी समयमें बाधाका विरह बना या उत्तरकालमें बना। ये दो विकल्प रखे हैं। उस ही कालमें बाधाविरह हो यह बात तो यों युक्त नहीं है कि किसी–किसी मिथ्याज्ञानमें भी बाधाविरह मालूम पड़ता है और ऐसा विचार बनता ही है। जिस समय हम उल्टा ज्ञान कर रहे हैं, पड़ी तो है सीप, जान रहे हैं चांदी, तो चाँदीका ज्ञान करते समय उसमें उसके ज्ञानमें बाधा-विरह भी तो है। बाधा उसके ज्ञानमें नहीं। वह सही रूपमें जान रहा है ठीक चाँदी ही तो है। तो तत्कालभावी बाधाविरह तो मिथ्याज्ञानमें भी है। तब मिथ्याज्ञान भी प्रमाण बन जायगा अर्थात् जिस समय जिस पदार्थका जैसा ज्ञान कर रहे हैं उस समय उसके खिलाफ दूसरा ज्ञान नहीं बन रहा, तो फिर सारे ज्ञान प्रमाण हो गए, चाहे झूठा हो चाहे सच्चा हो, इसमें तत्कालभावी बाधाविरह तो बनता नहीं।

सर्वथा अपूर्वार्थवादियोंके उत्तरकालभावी बाधाविरहकी असंगतता— यदि कहो कि ज्ञानकी सम्यक्ताके निर्णयका हेतु उत्तरकालभावी बाधाविरह है, याने आगामी कालमें बाधा न आये तो यह ज्ञान प्रमाण है और यदि आगामी कालमें उस ज्ञानको झुटला देने वाला बाधक ज्ञान बनता है तो प्रमाण नहीं है ऐसा उत्तरकाल-भावी बाधाविरह मानोगे तो इसमें यह पूछते हैं कि वह उत्तरकालभावी बाधाविरह ज्ञात होकर काम करता है या अज्ञात होकर प्रमाणताका निश्चय करता है। अज्ञात तो हो नहीं सकता। जो जाना ही नहीं गया, जो बाधाविरह अभी ज्ञात ही नहीं हुआ वह कैसे प्रमाणताका निश्चय करा दे? बाधायें न आना यह बात बने तो पूर्वज्ञान प्रमाण माना है, उस सम्बन्धमें विकल्प कह रहे हैं कि जिस समय जो ज्ञान किया जा रहा है उस कालमें तो बाधा विरह है नहीं, क्योंकि वह तो जान ही रहा सत्य अपनी समझमें। बाधाका अभाव उत्तरकालमें आयगा। जैसे रस्सीमें जाना कि यह सांप है तो यह कब समझमें आयगा कि यह सांप नहीं है? उसके बाद जबकि भली प्रकार उसका परीक्षण करे और जान गए कि यह रस्सी है तो बाधा आयगी कि नहीं? पूर्व-ज्ञानसे जो हम जान रहे थे उस जानकारीको झुठला देने वाले ज्ञानका नाम है बाधक-ज्ञान। बाधा देने वाले ज्ञानका अभाव हो तो प्रमाण है, बाधकज्ञान बनेगा भविष्य-कालमें, जिस कालमें हम झूठ जान रहे हैं दो चन्द्र, जान रहे हैं या रस्सीको साँप जान रहे हैं उस कालमें बाधाविरह कहां?

सर्वथा अपूर्वार्थवादकी मान्यताके साथ बाधाविरहकी पूर्वज्ञानसे अनु-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पत्ति –भैया ! जहाँ बाधा न आये वह ज्ञान प्रमाण है यह तो अच्छी बात है लेकिन सर्वथा अपूर्वार्थवादी कह रहे हैं यहां कि जहाँ बाधा न आये वह प्रमाण है तो उसकी बाधा न आनेके विशेषणको भी गलत साबित किया जा रहा है। झूठके साथ एक सत्य बात भी जोड़े तो वह भी झूठ होगा क्योंकि झूठके साथ लग रहा है। सत्य के साथ सत्य लगे उनका खण्डन नहीं किया जा सकता, पर किसी झूठके साथ सत्य लग जाय तो वह सत्य भी खण्डन के योग्य है। तो यह, यह पूछा जा रहा है कि बाधा का अभाव यदि जान गए तो पहिले ज्ञानसे जाना या उत्तरज्ञानसे ? जैसे रस्सीको हमने साँप समझ लिया अब बादमें फिर हमने जाना कि यह रस्सी है तब ही ना प्रथम ज्ञान झूठ बना। यदि उस रस्सीको रस्सी जाना और बादमें भी रस्सी जाना तो वह बाधाविरह कहलाता है। उस ज्ञानमें कोई बाधा नहीं आयी। सही ज्ञान किया उसके बादमें बाधा आयी तो वह जो बाधा है वह पूर्व ज्ञानसे जानी गई तो यह तो बिल्कुल असङ्गत है। रस्सीको साँप जानना इस ज्ञानके द्वारा क्या यह भी जान लिया जायगा कि उत्तरकालमें बाधक ज्ञान भी न बनेगा ऐसा क्या पूर्व ज्ञान जानता है। रस्सीको साँप जानते समय साँप जानने वालेके चित्तमें क्या यह बात भी आती है कि इस ज्ञानको झुठला देने वाला एक ज्ञान अभी और आयगा। इसका तो सीधा हिसाब है कि पहिले बाधक ज्ञान नहीं बनता और उत्तरकालमें ही बाधा आती है तब वह बाधावर्जित नहीं रहा। सो बाधाविरहपना पूर्वज्ञानसे तो जाना नहीं गया।

सर्वथा अपूर्वार्थवादियोंके उत्तरज्ञानसे बाधाविरहकी अनुपपत्ति—यदि कहो कि बाधाविरहपनेको हम अगले ज्ञानसे जानेंगे अतः वह अप्रमाण है। रस्सीको सर्प समझा और उसके बाद फिर दूसरा ज्ञान जो बनेगा कि यह सर्प नहीं है, यह तो रस्सी ही है तो ऐसे उत्तरकालमें जो बाधक ज्ञान बनेगा वह उत्तरकालके ज्ञान से जाना गया, ऐसा यदि कहते हो तो उस समयकी बात उस समय होगी। पहिले तो उल्टा ज्ञान प्रमाण बन बैठेगा, बादमें जब बाधक ज्ञान आयेगा तब कहेंगे कि यह पूर्वज्ञान प्रमाण नहीं है और दूसरी आपत्ति यह है कि जब वह उत्तरज्ञान बनेगा जो कि सही निर्णय कराये उससे पहिले पूर्वज्ञानका तो नाश ही हो गया, फिर जो ज्ञान नष्ट हो गया उस ज्ञानने बाधाविरहकी चिन्ता करना यह तो इस तरह है कि जैसे कहावतमें कहते हैं कि साँप तो गया अब उसकी लकीर पीट रहे हैं। जिस समयमें वह मिथ्याज्ञान बना, पूर्वज्ञान बना उस समय तो था वह। जब बाधक ज्ञान बना तब वह ज्ञान रहा नहीं तो अब किसको पीटें ? वर्तमानमें दोनों ज्ञान बने और कोई उसका विरोध करे तो बाधकता बने ! नष्टकी, बाधाविरहकी चिन्ता कौन करता है ? करे तो वह मूढ़ है।

बाधाविरहकी सत्यासत्यका अनिर्णय—और फिर भैया ! मान भी लो बाधा न आये ऐसा जान लिया तो ऐसा जाननेपर भी यह सत्य ही है यह कैसे निर्णय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हो ? रस्सीमें रस्सी ही जाना, अब कोई बाधा नहीं आयी ऐसा भी हमने वहाँ समझा और रस्सीको सर्प समझा और वहाँ मालूम पड़ रहा कि बाधा नहीं आती, यह ज्ञान ठीक है तो उसे भी सत्य समझ लिया जायगा। केवल जानने मात्रसे सच्चाई नहीं होती। कभी कभी आकाशकी तरफ देखते हैं तो ऐसा लगता है कि कुछ पतले पतले यहाँ केश भी लटक रहे हैं अथवा बहुत छोटे छोटे भुनगे चल रहे हैं। और जान दो, कभी कभी अपनी आंखोंसे ऐसा सामने नजर आता है कि लो यह कीड़ा गया, वह कीड़ा गया, आंखोंकी किसी स्थितिसे कुछ ऐसा भी प्रतीत होने लगता है, तो ऐसी बहुतसी चीजें जानी जाती हैं उनके सत्य और असत्यका कैसे निर्णय हो ?

बाधाविरहके निर्णयमें अन्योन्याश्रय व अनवस्था दोषकी प्रसक्ति-- यदि कहो कि मेरा ज्ञान सत्य है इसलिये सत्य कहलाया तो उसीका ही तो विवाद चल रहा है, उसमें सत्यता कैसे आयगी ? हमने जो कुछ भी जाना, रस्सीको साँप जाना तो, या रस्सीको रस्सी जाना तो, उसकी सच्चाईका हेतु क्या है ? यदि कहो कि पदार्थ सत्य है, जैसा जाना तैसा पदार्थ है इससे जाना गया कि यह ज्ञान सत्य है तो इसमें अन्यौन्याश्रय दोष हो गया। जब ज्ञानकी सच्चाई निश्चित हो तो पदार्थकी सच्चाई जानी जाय। जब पदार्थकी सच्चाई निश्चित हो तो ज्ञानकी सच्चाई निश्चित जानी जाय। यदि यह कहो कि उस ज्ञानमें सही निर्णय करने वाले ज्ञानसे कोई बाधा न आये तो वह प्रमाण है तो वह बाधा विरह वाला ज्ञान कैसे प्रमाण है ? उसके लिए अन्य बाधा विरह चाहिए। यों अनवस्था दोष आयगा और, जब बाधा विरहोंके जाननेमें ही हम अपना समय लगायेंगे और कहीं अन्त न आयगा तो हम कुछ भी निर्णय नहीं कर सकेंगे। शायद यह कहो कि सम्वादसे विनिश्चयसे उत्तरकाल भावी बाधा विरह सत्य है ऐसा हम समझ लेंगे तो वह सम्वाद भी वह ज्ञानका रूपक भी यदि उत्तर सम्वादसे बना, अन्य अन्य सम्वादोंसे तो वहाँ भी अनवस्था दोष है इस कारण बाधाविरह हेतु देकर द्विचन्द्र प्रत्ययकी अप्रमाण साबित करते बनता नहीं है।

अपूर्वार्थवादियोंके बाधा विरहकी असिद्धिकी अन्य युक्तियां— शायद यह कहो कि इसका अर्थ यह है कि कहीं किसी समय किसीको बाधा न आये तो वह ज्ञानकी प्रमाणताका कारण है। यह बात तो सम्भव मिथ्याज्ञानमें भी है। कुछ लोगों को रस्सीका साँप दिख रहा और वे साँप जान रहें उसमें झूटला देने वाला उनका नया ज्ञान नहीं बन रहा वह भी प्रमाण बन जायगा क्या ? यदि यह कहो कि जिस पदार्थके ज्ञानमें सभी पुरुषोंको सभी समयोंमें कोई बाधा न आये वह ज्ञान प्रमाण है बाधा न आये वह ज्ञान प्रमाण है तो यह बात तो सर्वज्ञकी बात हो सकती है। छद्-मस्थ जीवोंमें यह कैसे हो सकता कि किसी पदार्थके विषयमें सभी जगह सभी समय सबको बाधा न मिलती हो और यथार्थ जान रहे हों तो बाधा विरह विशेष देकर सर्वथा अर्थके ज्ञानको प्रमाण कहना युग नहीं बैठता। बात सही है। जिस ज्ञानमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बाधा न आये वह ज्ञान प्रमाण है। किन्तु जब मूलमें सर्वथा ज्ञात अर्थके ज्ञानको ही प्रमाण माननेका हठ किया तो बाधा विरहका स्वरूप भी नहीं बन सक रहा है। अथवा यों कहो कि साफ साफ सीधा बोले तो उसे छेड़ना क्या? जो असत्य बोले तो किसी भी शब्दसे वह सिद्ध करना चाहे उस सिद्धको मिटाया जा सकता है।

सर्वथा अपूर्वार्थवादियोंके अदुष्टकारणारब्धत्व विशेषणकी असंगतता अब दूसरा जो यह विशेषण है कि वह अपूर्व अर्थका विज्ञान निर्दोष कारणसे बना है, अदुष्टकारणारब्ध है ऐसा माननेसे यह ज्ञान तैयार होता है अतएव वह प्रमाण है तो 'निर्दोष कारणसे रचा गया है" यह ज्ञान अज्ञात हुआ ही ज्ञानकी प्रमाणताका कारण है या ज्ञात होकर ज्ञानकी प्रमाणताका कारण है। अज्ञात तो अयुक्त है। उस से तो कुछ बात ही नहीं बनती, उसके सत्त्वमें ही सन्देह है। यदि कहें कि ज्ञात होकर अर्थात् नेत्रमें कोई भी दोष नहीं है ऐसे निर्दोष कारणोंसे यह ज्ञान रचा गया है, ऐसा ज्ञान हुआ यह प्रमाणताका कारण है तो निर्दोष कारणोंसे रचा गया है ज्ञान यह बात तुमने जानली क्या? अरे नेत्र इन्द्रियमें जो कुछ है उसे तुमने कैसे जाना? अथवा उसकी जो अन्तः शक्ति है इन्द्रियकी कुशलता आदिक हैं वे तो अतीन्द्रिय हैं उनका इन्द्रियसे ज्ञान होना असम्भव है। अतीन्द्रियका ज्ञान तो तुम्हारे सिद्धान्तमें हो ही नहीं सकता, तो इन्द्रियमें जो शक्ति है वह अतीन्द्रिय नहीं है।

इन्द्रियादिकोंकी निर्दोषशक्तिके परिचयकी इन्द्रियागोचरता – थोड़ी देर को पुद्गलमें एक चर्चा उठाइये। इसमें जो काला, नीला, पीला आदि रूप दिखता है यह तो पर्याय है। और, रूप गुण क्या है। जैसे एक शक्तिका काला, नीला, पीला, लाल, सफेद परिणमन बना उस शक्तिका नाम है रूपगुण। तब भला बतलावो कि जिस तरह हम इन्द्रियसे रूपकी पर्यायोंको जान लेते हैं उस प्रकार रूप शक्तिको भी तो स्पष्ट जान लिया जाय। जब उसकी स्वरूप चर्चामें चलेंगे तो ऐसा लगेगा कि भले ही ये काले पीले आदिक इन्द्रियगम्य माने हैं, मगर रूपशक्ति तो अतीन्द्रिय है। रूपकी पर्याय इन्द्रियगम्य है पर रूपगुण इन्द्रियगम्य नहीं है। तो यों ये ऊपरकी जो रचनाएँ हैं इन्द्रियकी ये किसी प्रकार इन्द्रियगम्य हो जायें मगर इन इन्द्रियोंमें निर्दोष शक्ति है ऐसी उन शक्तियोंका ज्ञान इन्द्रियसे नहीं होता। फिर यह तुम सिद्ध ही नहीं कर सकते कि यह ज्ञान हमारा निर्दोष कारणोंसे रचा गया है।

अदुष्टकारणारब्धत्वके निर्णयमें अनवस्था – अथवा मान लो यह ज्ञान हो कि हमने जो जाना है वह निर्दोष कारणोंसे जाना है। मान लो यह ज्ञान भी हो जाय तो यह ज्ञान निर्दोष कारणसे बना है यह किसी अन्य ज्ञानसे जाना या सम्वाद प्रत्यय से जाना। सम्वाद प्रत्ययका अर्थ है विश्लेषकज्ञान। यदि कहो कि अदुष्टकारणारब्धता जानी गई है अन्यज्ञानसे तो इस तरह अन्य–अन्य ज्ञानोसे सिद्ध करते जानेकी डोर लग

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जायगी, अनवस्थादोष बनेगा। यदि कहो कि सम्वादप्रत्यक्षसे जाना तो उस सम्वादीज्ञानमें याने स्पष्ट करने वाले उस ज्ञानमें भी यह निर्दोष कारणोंसे रचा गया है यह तो सिद्ध करना होगा ना? तो वह होगा अन्यज्ञानसे। वहाँपर भी अनवस्था होगी। तुम यह सिद्ध नहीं कर सकते कि मेरा यह ज्ञान निर्दोष कारणोंसे रचा गया है।

स्याद्वादमें अभ्यस्तज्ञानसे संवादप्रत्ययकी सिद्धि—यदि तुम कहते कि स्याद्वादियोंसे भी हम कहेंगे यही सब बात तो। देखो बात तो कितनी सच है कि निर्दोष इन्द्रियसे जो ज्ञान बनेगा वह सच बनेगा और तुम बिगाड़ रहे हो इस कथनको तो जैनियोंके प्रति भी तो हम यह कह सकते हैं कि तुम कैसे सिद्ध करोगे कि निर्दोष कारणसे यह ज्ञान होता है? तो स्याद्वादी उत्तर देते हैं कि यथावत् जैसा कि है पदार्थ, उस पदार्थका निश्चय कराने वाला जो ज्ञान है तो उस ज्ञानकी सच्चाई निर्णीत की जानेकी स्थितियाँ दो तरहकी होती हैं। एक अभ्यासदशा और एक अनभ्यासदशा। हमने जाना कि यह खम्भा है, यह तुरन्त प्रमाण बन गया क्योंकि हम रोज यहाँ आते हैं, रोज निरखते हैं। उसका अभ्यास हमें है। बहुत भली भाँति परिचय है अतएव वह सम्यक् बन गया और कभी अनभ्यासदशाकी भी स्थिति हो तो वहाँपर हम जो निश्चय करेंगे तो किसी दूसरे अभ्यस्त ज्ञानके द्वारा निश्चय कर लेंगे। यहाँ अनवस्थादोष यों न आयगा कि किसी भी ज्ञानको सत्य समझनेके लिए भले ही अन्य ज्ञान बना डालें, और वह ज्ञान भी यदि सत्य समझमें न आये तो उसकी सच्चाईके लिए भी अन्य ज्ञान बना डालें, किन्तु जहाँ अभ्यस्तज्ञान आ जायगा वहींसे अनवस्था समाप्त होगी।

अभ्यस्त ज्ञानसे संवादप्रत्ययकी उत्पत्तिका एक दृष्टान्त—जैसे रास्तेमें चलते जा रहे हैं एक अनजान रास्ता है, वहाँ प्यास लगी, पानीकी जरूरत है तो कुछ फर्लांग दो फर्लांग दूर ऐसा आभास हुआ कि यहाँ जलाशय होना चाहिए। अभी केवल आभास हुआ कि यहाँ जलाशय होना चाहिए। कुछ थोड़ी सी बातें ज्ञात हुईं। जैसे किसी मेढककी आवाज सुननेमें आयी अभी अभ्यस्त दशा है। यहाँ जलाशय है ही ऐसा निर्णय नहीं बना। जरा और आगे चले तो थोड़ा कहीं फूटा घड़ा पड़ा था, उससे कुछ और दृढ़ता हुई कि होना चाहिए जलाशय। थोड़ी दूर और चले तो कोई पुरुष पानी भर कर ला रहा था, लो अब वह अभ्यस्त दशा आ गई। सीधा देख लिया कि यह पानी है। तो जहाँ अभ्यस्त दशा है वहाँ ये दोनों बातें हैं कि वहां कोई बाधा नहीं आती। और निर्दोष कारणोंसे बना हुआ ज्ञान है इन दोनोंका स्वयं सम्वेदन हो जाता है और कोई अनभ्याश दशा हो तो अन्य अभ्यस्त विषयी ज्ञानसे उसका निर्णय हो जाता है। इसमें अनवस्थाएँ नहीं आती क्योंकि कभी तो किसी जगह अभ्यासकी उत्पत्ति बन जायगी और यदि न बने तो अनभ्यास होकर खिर जायगा। इस बातका वर्णन इस ग्रन्थमें आगे विस्तारसे किया जायगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सर्वथा अपूर्वार्थके ज्ञानके प्रामाण्यमें लोकसम्मतिकी असिद्धि— बाधावर्जित और अदुष्टकारणारब्ध ये दोनों विशेषण तुम्हारे तो बनते नहीं और तृतीय जो यह विशेषण था कि सर्व लोग जिसे मान जायें वह ज्ञान प्रमाण है। तो सर्व लोग मान जायें इसका अर्थ ही यह है कि जैसी वस्तु है वैसा वस्तुके स्वरूपका निश्चय बने वही लोकसम्मत कहलाता है। तो यों सर्वथा अपूर्व अर्थका ज्ञान प्रमाण है, यह बात नहीं कहा जा सकती किन्तु जिस ज्ञानमें कुछ भी अपूर्व मर्म समझमें आया वह ज्ञान प्रमाण है। इस तरह यहाँ तक अपूर्व अर्थ विशेषणकी व्याख्या की गई है। इससे यह निश्चय करना चाहिये कि वस्तु चाहे ज्ञात हो गई हो अथवा न ज्ञात हुई हो दोनोंमें अर्थात् अधिगत व अनधिगत पदार्थमें विशेष अर्थ परिच्छेदन हो और उसमें संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय न हो तो वह ज्ञान प्रमाणरूप है। यही ज्ञान बाधावर्जित है, यह निर्दोष है, यही लोकसम्मत है। सर्वथा अपूर्वार्थके ही ज्ञानकी प्रमाणता होती है यह एकान्त युक्त नहीं है।

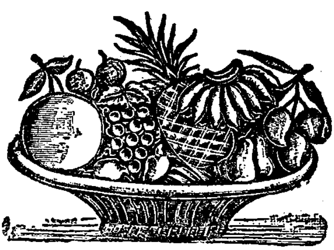

Version 1